मेरी धरती : मेरे लोग

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

मेरी धरती : मेरे लोग / शेषेन्द्र शर्मा
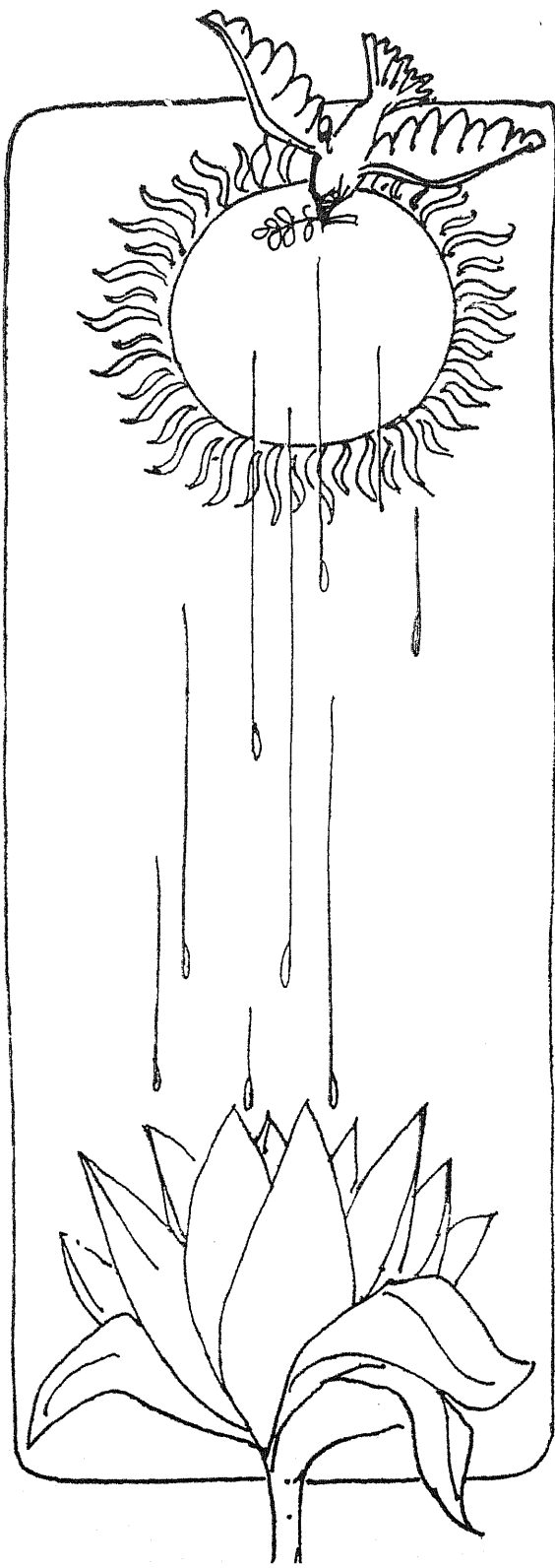
- मेरी धरती : मेरे लोग : तेलुगु प्रथम संस्करण : १९७५ और प्रथम हिन्दी संस्करण : १९७५
- दहकता सूरज : तेलुगु प्रथम संस्करण : १९७४ और प्रथम हिन्दी संस्करण : १९७५
- गुरिल्ला : तेलुगु प्रथम संस्करण : १९७७ और प्रथम हिन्दी संस्करण : जनवरी १९७८
- प्रेम-पत्र : तेलुगु तथा हिन्दी संस्करण : १९८०

॥ अनुवादक ॥

श्री ओमप्रकाश 'निर्मल'

सम्पादक

श्री नरेश मेहता

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

●

प्रथम संस्करण : १९८३

●

मूल्य : ४५.००

●

लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

प्रिय पत्नी इन्दिरा को
(राजकुमारी इन्दिरा देवी धनराजगीर)
प्रेमोपहार

अनुक्रम

काव्य-गन्धर्व : श्री शेषेन्द्र शर्मा

आधुनिक तेलुगु के शीर्षस्थ कवि श्री शेषेन्द्र शर्मा का नाम हिन्दी के सुधी-कवियों-लेखकों में तथा आधुनिक भारतीय काव्य-साहित्य में न केवल सुपरिचित ही है बल्कि प्रखर सर्जक का पर्याय जैसा है ; साथ ही उनके प्रति आत्मीय सम्मान भी है। यह आत्मीयता उनके संस्पर्शी व्यक्तित्व के प्रति है तथा सम्मान उनके प्रातिभ कृतित्व के प्रति। वह उन कुछ विरल कवियों में हैं जो अपने मोहक तथा सौम्यवत व्यक्तित्व के कारण भी ध्यान आकर्षित करते हैं। जो कवि होने के साथ-साथ कवि की ग्रीक-प्रतिमा भी लगें, ऐसे रम्य व्यक्तित्व कम ही होते हैं। शेषेन्द्र उन्हीं अपवादों में से एक हैं, इसीलिए उनके लिए 'काव्य-गन्धर्व' संज्ञा प्रयुक्त हुई है।

सामान्यत: व्यक्तित्व अनेक प्रकार के होते हैं—सम्भ्रान्त, पाण्डित्यपूर्ण, सरल, भावुक, आत्ममुग्ध, आत्मश्लाघी, दम्भी, दर्पपूर्ण या और भी बहुत-कुछ। शेषेन्द्र के व्यक्तित्व में एक प्रकार की सम्भ्रान्तपूर्ण काम्य इन्द्रधनुषता की ऐसी लय है जो उन्हें पारदर्शी भी बनाती है तथा असंग भी। कोई भी कलाकार प्रचलित अर्थ में न तो सरल ही होता है और न ही कुटिल। सरलता जहाँ सन्तों का लक्षण है वहाँ कुटिलता राजनीतिज्ञों का। उत्तरोत्तर सहज, मानवीय तथा उदात्त होते जाने का नाम कलाकार है। कलाकार का व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया होता है। पाण्डित्यपूर्ण वाणी, आसवी 'प्रसन्नं सलिलं' नेत्र, आत्मस्थ तन्मय भंगिमा के साथ दूरागत चले गये किसी राग की प्रतिगूंज का बोध, किसी के व्यक्तित्व को देखकर लगे तो आप उस स्थिति और व्यक्ति को क्या कहेंगे ! इसी-लिए कलाकार सरल लगते हैं पर होते नहीं हैं, क्योंकि उनका व्यक्तित्व निरन्तर प्रक्रियारत रहता है। ऐसे वाद्य-व्यक्तित्व के शेषेन्द्र को देखते हुए आप अनजाने ही उनके व्यक्तित्व का उल्लंघन कर जाते हैं और आप शेषेन्द्र को नहीं बल्कि जैसे श्री शेषेन्द्र शर्मा का राजस तैलचित्र देख रहे होते हैं। उनके व्यक्तित्व की त्वरा निश्चय ही सिंह राशी की है परन्तु नेत्रों से वह आहट लेते मृग लगते हैं। वह संकल्पनिष्ठ राजनीति तथा आर्ष-कविता की एक साथ झाँई देते हैं। जो

व्यक्ति, कवि और विचारक रूप में निरन्तर संलाप, सम्वाद, सम्प्रेषण और सृजनात्मकता की मानसिकता में रहता हो उसे आप व्यक्ति के रूप में कब देखे-समझें, कहना कठिन है। इस अर्थ में मुझे प्राय: निराला और मुक्तिबोध याद आते रहे हैं। शेषेन्द्र के व्यक्तित्व का वादी-स्वर संगीत है जो उनके मौन में भी सुना जा सकता है। वह प्रत्येक समय पीपल की भाँति प्रकम्पित लगते हैं। अपने स्थायी मौन से जब कभी वह हठात वैचारिक बहस पर आते हैं तब वह बातें नहीं बल्कि आपमें यात्रा कर रहे हैं की प्रतीति कराते हैं। शायद वह बातें इसलिए नहीं करते हैं क्योंकि वह तो व्यक्ति करता है और कोई भी सर्जक, व्यक्ति से अधिक 'फेनामेनन' होता है। देहयष्टि की सुदर्शनता में जिस प्रकार की निष्णातता होगी उसी प्रकार की माधवता व्यवहार की भी होगी। बहस आदि को छोड़कर शेषेन्द्र भाषा का इस्तेमाल बोलने से अधिक देखने के लिए करते हैं। सामान्यत: कवि-व्यक्तित्व वाली उनकी प्रखरता, शब्द-परुषता, आक्रामक-मुद्रा उनके निर्वेद वैयक्तिक व्यक्तित्व में कहीं नहीं मिलेगी। हाँ, एक सतर्क प्रशान्तता, तार्किक जागरूकता तथा वैचारिक पैनेपन के साथ आपको बोलता हुआ सुनेंगे लेकिन प्रत्युत्तर की कोई जल्दबाजी नहीं होगी। बड़ा ही मन्दाक्रान्ता छन्द वाला व्यक्तित्व है। वह कहीं भी हों, सम्पूर्णता के साथ ही होंगे। व्यवहार-जगत की जिस प्रशान्त शाद्वल-भूमि पर आज वह खड़े हैं उसमें उनकी पत्नी राजकुमारी इन्दिरा जी, जो कि स्वयं भी अंग्रेजी की प्रसिद्ध कवियत्री हैं, का बड़ा योगदान है। ऐसी मिथुन-सृजनात्मकता तो और भी विरल है। अस्तु—

अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त शेषेन्द्र के अनेक काव्य-ग्रन्थ हिन्दी में भी अनुदित हो चुके हैं, तथा अनेक प्रसिद्ध कवियों, आलोचकों और विद्वानों द्वारा उनकी काव्य-प्रतिभा, वैचारिक अदम्यता एवम् सर्जनात्मक उपलब्धियों की प्रशंसा भी हुई है; लेकिन प्रस्तुति का यह सारा प्रयास स्फुट जैसा ही होता रहा इसलिए यह अनुभव किया गया कि उनकी उपलब्ध अनुदित कविताओं का एक आधिकारिक एवम् प्रामाणिक संकलन आवश्यक हो गया है। विगत वर्षों में विभिन्न भाषाओं की क्षेत्रीय सीमाओं को लांघकर भारतीय-कविता का जो एक समग्र स्वरूप उभरा है उसे आदान-प्रदान वाले इस प्रकार के मानक-प्रतिनिधि संकलनों के द्वारा स्पष्ट रूप में देखा-परखा जा सकेगा जिससे विकास की इस नैसर्गिक एवम् आवश्यक प्रक्रिया को स्थायीत्व, बल और दिशा मिल

सकेगी। कुछ समय के बाद प्रत्येक सार्थक कविता अपनी भाषा के छोटे आकाश को लाँघ कर बड़े आकाशों में द्वीपान्तरित होती ही है। कविता के वैश्विक बनने की इस उदात्त प्रक्रिया में भाषा, देश, जाति आदि की सीमाएँ तो केवल कलेवर होती हैं। इन कलेवरों की आरम्भिक अनिवार्यता स्वीकारते हुए भी स्वयं कविता द्वारा ही इन सबका उल्लंघन भी उतनी ही नैसर्गिक अनिवार्यता होती है। किसी भी कवि के प्रातिभ-व्यक्तित्व की काव्य-यात्रा के सही अक्षांश-देशान्तर का पता इस प्रकार के प्रतिनिधि संकलनों के द्वारा ही सम्भव हुआ करता है क्योंकि देश-काल की कालातीत असीमता में ये कुतुबनुमा का काम करते हैं। इधर के अहिन्दी भाषी आधुनिक कवियों में सम्भवतः श्री शेषेन्द्र शर्मा का ही ऐसा संकलन प्रकाशित हो रहा है जिसका उद्देश्य केवल कवि को ही प्रस्तुत करना न हो कर भारतीय-कविता को स्वरूपित, रेखांकित तथा स्थायीत्व देना भी है। इस प्रकार के बड़े प्रयोजन के लिए माध्यम भी बड़ा होना चाहिए, जब कि शेषेन्द्र के काव्य में तो भारतीय-काव्य से भी आगे के आकाशों में जाने के गुण और धर्म दोनों ही हैं। इस संकलन के द्वारा हम कवि की सृजनात्मक ओजस्विता से तो परिचित होते ही हैं लेकिन इससे हिन्दी की सम्प्रेषणात्मक केन्द्रीयता तथा भाषागत क्षमता की भी पुष्टि होती है। अनुवादों के कारण भाषाई क्षमता के क्षितिजों का सदा विस्तार हुआ है।

यह संकलन श्री शेषेन्द्र शर्मा के केवल कवि का ही प्रतिनिधित्व करता है जबकि उन्होंने बहुत ही विचारोत्तेजक निबन्ध, आलोचनाएँ आदि भी लिखी हैं तथा नाटकों के अतिरिक्त जीवन्त सैलानी यात्रा-वृत्तान्त भी। किसी दिन वह अवश्य ही अपनी, इस समग्र रचनात्मकता के साथ हिन्दी में भी जाने जाएँगे। यहाँ संकलित कविताएँ भी कवि श्री ओमप्रकाश 'निर्मल' द्वारा पहले ही अनुवाद रूप में 'इण्डियन लेंग्वेजेज फोरम'--गोशा-महल, हैदराबाद द्वारा प्रकाशित शेषेन्द्र के विभिन्न काव्य-ग्रन्थों में सम्मिलित रही हैं। इस अर्थ में निर्मलजी, शेषेन्द्र के मुख्य अनुवादक रहे हैं। मानक हिन्दी की दृष्टि से तथा उत्तर-दक्षिण के अभि-व्यक्तिगत भेद को देखते हुए जहाँ बहुत आवश्यकता अनुभव हुई तथा परिवर्तन की सहज सम्भावना लगी वहाँ हल्का सा भाषाई एवम् विन्यासगत संस्कार कर दिया गया होगा; अथवा कविता की लयात्मकता या काव्य-वाचन की दृष्टि से किंचित् नोंक-पलक, नयन-नक्श चुस्त दुरुस्त कर दिये गये होंगे अन्यथा कवि द्वारा स्वीकृत और मान्य निर्मलजी के परिश्रम साध्य अनुवाद को यथावत् ही ही रहने दिया गया है। ऐसा लगता है कि अनुवाद मूल काव्य के आन्ध्र-आस्वाद को बहुत अंशों तक सम्प्रेषित करता है और इसके लिए निर्मलजी की आशंसा

की जानी चाहिए। कविताओं के चयन, क्रम एवम् स्वरूप-सम्पादन में श्री शेषेन्द्र की रचना धर्मिता तथा अभिरुचि को सर्वोपरि रखा गया है। मेरी सदा से यह आस्था और मान्यता रही है कि प्रत्येक ओजस्विता को उसका वर्चस्वी आकाश प्राप्त होकर ही रहता है, समय-समय की बात हो सकती है। भारतीय-कविता के भावी इतिहास में श्री शेषेन्द्र शर्मा का दक्षिणायन से उत्तरायण की ओर प्रस्थान एक कालमान जैसा सिद्ध होगा।

वस्तुतः कभी भी सार्थक कवि या कविता केवल अपनी भाषा या प्रदेश की सीमा तक ही सीमित नहीं रह सकते। मानवीय चेतना के विकास और द्वीपान्तर की तरह ही कवि और कविता का भी विकास और द्वीपान्तर, भाषा और देश के सन्दर्भ में होता आया है। भले ही अपनी आरम्भिक अवस्था और परिचिति में किसी भौगोलिक या ऐतिहासिक या सामाजिक सीमा का बोध करवाएँ परन्तु उपलब्धि और सम्बोधन के स्तर पर देश और काल का उल्लंघन उनकी नियति है। इस नैसर्गिक प्रक्रिया में सारी प्रादेशिक भाषाओं के सार्थक कवियों को अनिवार्यतः भारतीय होना पड़ता है तथा इसी प्रकार की और बड़ी प्रतिश्रुति तथा प्रक्रिया के बाद कुछ वैश्विक कवि भी बनते हैं। उपस्थित हो हो जाने के उपरान्त तत्व, दिशा और देशान्तर व्यापी होने के लिए बाध्य है। स्थानीयता के वैश्विक होने की यह उदात्त मानवीय प्रक्रिया, कला और साहित्य में व्यक्त होती आयी है तथा क्रूर और पाशविक प्रक्रिया राजनीति एवं राजतन्त्र में देखी जा सकती है। मध्य-युग तक यह प्रक्रिया अनेक कारणों से बहुत धीमी थी लेकिन आज विज्ञान और तकनीकी विकास के कारण यह प्रक्रिया सार्वभौमिक तथा क्षिप्र हो गयी है; लेकिन काव्य या साहित्य में इस मानवीय या वैश्विक सम्बोधन का विस्तार किसी बाहरी कारण या माध्यम के द्वारा नहीं हुआ करता। एक कारण तो इतिहास की प्रक्रिया होती ही है पर ज्यादा आधारभूत कारण उस रचना की स्वयं अपनी कालजयी क्षमता होती है। इसी क्षमता-बल पर बहुत प्राचीन और मध्ययुगीन साहित्य हम तक आ सका। विशद विवेचन में न भी जाएँ तब भी देख सकते हैं कि आज राजनीति में बहुत तेजी से मध्ययुगीन मानसिकता, एकांगी मनोवृत्ति, क्षेत्रीय संकीर्णताएँ आदि फिर से पनप रही हैं। विकास और विरोध की गतियाँ परस्पर संघर्षरत हैं। आस्था और नैतिकता के बिन्दु पर असुरक्षित व्यक्ति बिखर रहा है तो राष्ट्र और समाज, दिशा और दृष्टि के अभाव में चरमरा रहे हैं। राष्ट्र की जिस संकल्पना को लोकोन्मुखी बनाया जाना था

उसके स्थान पर सामन्ती राजवंश में परिणत हो जाने का सारा बानक बन चुका है। समाज की आधारभूत वर्ण और वर्ग की समस्या तथा आर्थिक विषमता से पक्ष और विपक्ष, वाम और दक्षिण सभी राजनीतिक दल कतराते हैं। इसके विपरीत अनेक प्रकार की बाधाओं के बावजूद विभिन्न भाषाओं का साहित्य एक ओर तो मानवीय टूट, सामाजिक विषमता को व्यक्त कर रहा है तो दूसरी ओर भारतीय समग्रता की ओर भी बढ़ रहा है। लेकिन ऐसा क्या अनायास होता है ? नहीं, इतिहास की यह अनिवार्य एवम् नैसर्गिक प्रक्रिया होती है कि जब भी राष्ट्र, सभ्यता और संस्कृति में मूल्यों का क्षरण, पूर्ण बिखराव का संकट तथा अलगाववादी प्रतिशक्तियाँ सक्रिय तथा प्रमुख होने लगती हैं तब उस देश और जाति की अस्मिता, संकल्प, शक्ति और जिजीविषा अनिवार्यत: काव्य और साहित्य के माध्यम से अपने को कवलित होने से बचाते हैं पर इसके लिए आवश्यक है कि काव्य और साहित्य अन्य सारी चीजों से अपना पृथकत्व स्पष्ट बनाये रखें। आज हम वेदव्यासकालीन मदान्ध शक्ति-काम्यता से अथवा तुलसी-दास के भक्ति-युग की अस्मिताहीनता की संक्रान्ति से सैकड़ों गुना अधिक दुरावस्था से गुजर रहे हैं। आज के कवि और काव्य पर यह ऐतिहासिक दायित्व आया हुआ है कि वह मनुष्य मात्र को रचनात्मक आश्वस्ति दे क्योंकि मनुष्य धर्म, राजनीति, विज्ञान आदि की आश्वस्तियाँ या तो देख चुका या देख रहा है और अस्तित्व के अन्धे मुहाने पर पहुँच चुका है। काव्य का यह ऐतिहासिक दायित्व ही तेलुगु के इस तेजस्वी कवि को दक्षिण के चट्टानी पठारों से उत्तर के जलविपुल घास के रम्य मैदानों की ओर विन्ध्याचल लाँघने के लिए बाध्य कर रहा है। भारतीय होने की इस अनिवार्य सांस्कृतिक प्रक्रिया में इसका विलोम भी उतना ही सही होगा, पर ऐसा विन्ध्याचल-उल्लंघन करता भी अगस्त्य-मेधा का महाकवि ही है।

साहित्य और राजनीति के सन्दर्भ में यह जानना भी आवश्यक है कि साहित्य कभी भी राजनीति का प्रवक्ता नहीं होता। वह मनुष्य के सदाशिव व्यक्तित्व के प्रति तथा समाज के कल्याणकारी स्वरूप के प्रति तो जवाबदेह होता है पर राजनीति और राजतन्त्र के प्रति नहीं क्योंकि इन दोनों की प्रकृतियाँ, प्रवृत्तियाँ और निष्पत्तियाँ सभी भिन्न होती हैं। राजनीति के लिए केवल वर्तमान का ही अर्थ होता है परन्तु काव्य या साहित्य के लिए इसका कोई विशेष प्रयोजन नहीं है। वर्तमान को समझने और अनागत को सम्भावित करने के लिए काव्य और साहित्य अतीत को निरन्तर परिभाषित करते रहते हैं, जबकि राजनीति के लिए यह सबसे बड़ी असुविधा की स्थिति होती है।

निरन्तर परिभाषित करते चलना, यह अतीत को प्रामाणिकता देने के लिए नहीं किया जाता है बल्कि उसे केवल प्रमाण के रूप में परिभाषित करने के लिए है। यह एक प्रकार से जातीय अस्मिता और सांस्कृतिक चेतना के स्रोत के उत्खनन की प्रक्रिया है न कि यथार्थ या वर्तमान से पलायन। पलायन, राजनीतिक क्रिया है, न कि साहित्यिक। काव्य या साहित्य में वर्तमान केवल विश्वसनीयता के लिए ही अर्थ रखता है। काव्य यह जानता है कि वर्तमान हो या भविष्य उसे अनिवार्यतः अतीत होना ही है अतः बीत चुकने के बाद जो शेष है उसे तो आधार बनाकर काल, दिशा और आकाश के क्रम में अंक, रेखा और शब्द में रखा जा सकता है लेकिन बीतने वाली संज्ञाओं को स्थिर आधार कैसे बनाया जा सकता है ? अतीत कभी भी व्यतीत सत्ता नहीं होता क्योंकि वह मृत नहीं होता। अतीत का भले ही ऐन्द्रिय व्यवहार न किया जा सके लेकिन क्या मात्र इतने से ही वह अप्रासंगिक भी हो जाता है ? अतीत बराबर कई रूपों में शताब्दियों बाद तक भी अपनी सत्ता बनाये रखता है—सभ्यताएँ, संस्कृतियाँ, ज्ञान-विज्ञान, कलाएँ, भाषाएँ क्या बिना अतीत के समझी या पहचानी जा सकती हैं ? राजनीति यह भ्रम लोगों को दिलाना चाहती है कि अतीत यदि कुछ है तो वह केवल बीती हुई स्मृति है जिसका वर्तमान में तथा यथार्थ से कोई अर्थ या प्रयोजन नहीं है। सत्ता तो वर्तमान की ही है। राजनीति जानती है कि अतीत से कटकर व्यक्ति, समाज, सभ्यता, संस्कृति सभी कुछ स्मृतिभ्रंश रूप में अस्मिताहीन हो जाएँगे। वह यह भी जानती है कि अतीत पर तो नियन्त्रण नहीं किया जा सकता लेकिन वर्तमान पर आधिपत्य जमाया जा सकता है। वास्तविकता यह है कि यह सृष्टि काल-प्रवाह से अधिक विराट, ऋत् रूप में चेतना-प्रवाह है। यह चेतना ही संख्या रूप में काल है, रेखा रूप में देशगत है तथा शब्द रूप में महत्, उर्ध्व और आकाशोन्मुखी है। अतः हम इस निष्कर्ष पर आ सकते हैं कि काव्य और साहित्य किसी के पूरक नहीं हैं। ये भी धर्म, दर्शन, राजनीति या विज्ञान की भाँति ही समाज को दिशा और बोध देते रहे हैं। यह सृष्टि एक सतत चेतना-प्रवाह है और अतीत इस प्रवाह के उस सिरे पर है जो कि हमारे वर्तमान के पहले पड़ता है। वर्तमान अतीतजन्मा है न कि अतीत, वर्तमानजन्मा। इसीलिए अतीत निरन्तर इतिहास, परम्परा आदि बनकर हमारे वर्तमान पर पर प्रक्षेपण करता चलता है। काव्य या साहित्य, सृष्टि के इसी नैसर्गिक औदार्य को रचनात्व देते हैं। यह रचनात्व ही सृष्टि का उद्घाटन करना होता है। चेतना, सृष्टि और संस्कृति के इस विशाल फलक पर राजनीति नगण्यता अनुभव करती है इसलिए वह काव्य या साहित्य

के इस रचना-सापेक्ष फलक को अपने अस्तित्व के लिए विरोधी सत्ता और शक्ति समझती है। सच तो यह है कि अपने इस मानव कल्याणकारी चरित्र के कारण काव्य या साहित्य सत्ताकामी राजनीति के समानान्तर नहीं होते। यदि उस संदर्भ में कुछ हो सकते हैं तो राजनीति की रेखा को काटती हुई प्रलम्ब रेखा ही हो सकते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में काव्य या साहित्य की राजनीतिक चेतना को समझना चाहिए। श्री शेषेन्द्र शर्मा की कविता के सन्दर्भ में यह सम्बन्ध महत्व रखता है इसलिए इस विवेचन की आवश्यकता हुई। वह राजनीतिक विचारधाराओं के प्रति एक व्यक्ति और एक कवि दोनों ही रूपों में जागरूक हैं। सामाजिक प्रश्नों और विषमताओं से अवगत ही नहीं हैं बल्कि उनकी अपनी मान्यताएँ तथा निष्कर्ष भी हैं। इस अर्थ में वह वामपंथी विचारधारा के लगते हैं। अपने निबन्ध और आलोचनाओं में भी उन्होंने मार्क्सवाद का पक्ष लिया है लेकिन साथ ही वह अपने काव्य और साहित्य में क्लासिकीय परम्परा के भी वैसे ही पक्षधर हैं। मनुष्य के लिए जहाँ वह आक्रोश करते हैं वहीं उन्हें पुष्प या पक्षी भी कम आकर्षित नहीं करते। यह रचनात्मक सन्तुलन ही शेषेन्द्र को विशिष्ट कवि के रूप में प्रस्थापित करता है। प्रत्येक समर्थ कवि की भाँति शेषेन्द्र ने भी स्थिति को उलट दिया है कि वह राजनीति के लिए नहीं बल्कि राजनीति उनके कवि के लिए है इसीलिए शेषेन्द्र की कविता में जिस प्रकार राग-भाव रसा-बसा मिलेगा उसी प्रकार राजनीति या और कुछ। उनकी कविताएँ राजनीति को प्रस्तुत करती हैं पर वे राजनीतिक कविताएँ नहीं कही जा सकतीं। इस अर्थ में शेषेन्द्र और मुक्तिबोध में समानता है कि वह भी राजनीतिक कवि नहीं हैं जबकि वह निरन्तर राजनीति पर कविता लिखते हैं। मुक्तिबोध राजनीति से आतंकित हैं परन्तु शेषेन्द्र उसे आयुध बनाकर सामाजिक तथा राजनीतिक वैषम्य पर काव्यास्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं। 'गुरिल्ला' इसका सबसे ज्वलन्त और मुखर प्रमाण है। इन दोनों को ही इनकी अपनी काव्य की समझ कवि बने रहने में सहायक होती है। मुक्तिबोध सारी आतंकित मनःस्थिति को विशाल फेंटेसी का रूप देकर रच डालते हैं जबकि शेषेन्द्र प्रकृति के मुक्तलोक में उस विषमता को रखकर तथा अपनी क्लासिकीय काव्य-समझ का भरपूर प्रयोग कर 'मेरी धरती : मेरे लोग' जैसी अविस्मरणीय रचना कर डालते हैं। इसीलिए प्रभूत प्रकृति के होते हुए भी शेषेन्द्र न तो केवल प्रकृति के रूमानी कवि कहे जा सकते हैं और न ही उनके राजनीति हरबों-हथियारों का प्रयोग उन्हें राजनीति का कवि बनाता है। निश्चय ही राजनीति उनके काव्य का वादी-स्वर है, परन्तु जीवन में जिस प्रकार खाँचे या विभाजन नहीं होते उसी

प्रकार बड़े रचनाकार में भी ऐसी कोई पृथकता या अस्वीकृति नहीं हुआ करती है। इसलिए शेषन्द्र जीवन की समग्रता के कवि हैं। उनका प्रतिपाद्य आद्यन्त काव्य ही होता है इसलिए कोई भी पंक्ति अनरचित नहीं होगी। रचनात्व की यह बाध्यता ही है कि वह स्थिति को नहीं बल्कि स्थिति के दबाव को सटीक और शक्तिशाली बिम्ब के माध्यम में परिणत कर देते हैं :

'खेत में मेरा काम। पाँव की जंजीर बन गया है।'
'इस देश के वृक्ष अश्रु बहाते हैं। और खेत रोते हैं। जब वे देखते हैं कि उनके बच्चों को। पाठशाला की ओर घसीटा जा रहा है।'
'यह पुष्प एक पक्षी है। जो तुम्हारे जूड़े में नीड़ बनाना चाहता है।'
'इस देश के कवियों और शब्दों को। लग गयी है दीमक। यहाँ तक कि सड़ रहे हैं ऋषि भी पुस्तकालयों में पुस्तक बनकर ! छोड़ दिया गया है विश्व के मानचित्र पर। मेरा देश एक अँगूठे की छाप बन कर।

एक कवि के रूप में वह जानते हैं कि मनुष्य का उदात्ततम व्यक्तित्व काव्य में ही सम्प्रेषित हो सकता है। यह समझ ही कवि को महाकाव्य की मानसिकता प्रदान करती है। दूसरी सारी चीजें केवल उपादान हैं मूल तो काव्य का सृजन है। प्रत्येक बड़े कवि के साथ प्रायः परिभाषाएँ और काव्य की समझ में परिवर्तन करने पड़ते हैं। आदर्श स्थिति तो यही होनी चाहिए कि किसी भी बड़े कवि को समझने के लिए हम न तो कोई बनी-बनायी समझ काम में लाएँ और न ही किसी प्रकार का कोई दायरा बनाएँ। किसी भी प्रकार का पूर्वग्रह सत्य और वास्तविकता को धुँधलाता ही है। किसी भी कवि या कविता को जब तक निरपेक्ष तत्व या तात्विकता नहीं माना जाएगा तब तक हम उसके निहितार्थ को कभी नहीं समझ सकेंगे। मुक्तिबोध को पहले उपेक्षा के कारण नहीं समझा गया और आज उपयोग के कारण फिर नहीं समझा जा रहा है। निराला के साथ भी यही होता आया है पर किसी भी बड़े कवि की सम्यक जानकारी के लिए एक समझदार पूर्ण दूरी आवश्यक होती है।

कविता, मानवीय वैचारिक-आरण्यकता का ब्रह्मकमल होती है। कविता से बड़ी न सृष्टि है और न स्वयं सृष्टा ही। जब भी किसी बड़े कवि की सृजनात्मकता से साक्षात होता है तब इसकी प्रतीति और अधिक उजागर होती है। संसार के सारे धर्म कविता हैं परन्तु सारी कविता धर्म नहीं है। जीवन की भाँति कविता भी अपरिमेय होती है। प्रत्येक बड़ा कवि इसी अपरिमेयता को बिम्बों,

प्रतीकों, फेंटेसियों आदि के माध्यम से रचता है। इस रचनात्व पर देश, काल और परम्परा का निश्चय ही प्रभाव पड़ता है परन्तु जिस उदात्त मानवीय दृष्टि से वे रचनाएँ उद्भूत होती हैं वे इतनी निर्बन्ध होती हैं कि सभी काल की मानवता उनसे सम्बोधित होती है। एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि कैसा ही महत् या विश्वकवि क्यों न हो, रचता वह एक देश और एक काल को ही है परन्तु उसमें निहित दृष्टि ही उसे देश-कालातीत भी बनाती है। इसीलिए बड़ा कवि और बड़ी रचना कभी अपना सन्दर्भ, प्रासंगिकता और प्रयोजन नहीं खोते। रचना में देश और काल की प्रयुक्ति होती ही इसलिए है कि उन्हें अपने देश और काल के स्वरूप से मुक्त किया जाए। इसीलिए बड़ी रचना या बड़ा कवि सिवाय मानवता के और किसी के प्रति जवाबदेह नहीं होता। जब भी कविता अपनी इस मूल आर्ष-प्रकृति से, गुण-धर्म से हटी है तब-तब वह भ्रष्ट हुई है। लाख राज्यकृपा, संरक्षण या पुरस्कार मिलते रहे हों परन्तु मानवता ने ने उन्हें भुला दिया है। देश और काल तो बीत जाने वाली संज्ञाएँ हैं परन्तु कविता नहीं। वाल्मीकि या व्यासकालीन या होमर और दान्तेकालीन समाज और काल तो अब कहीं नहीं है परन्तु क्या रामायण, महाभारत, अभिज्ञान शाकुन्तलम, हेमलेट, आडेसी आदि भी क्या बीत गयी रचनाएँ हैं ? या हो सकती हैं ?

कविता के बारे में कुछ बातें अनिवार्यतः याद रखनी होती हैं कि उसमें कुछ तत्व आदिम रहस्यात्मकता, तटस्थ पवित्रता, तिलिस्मीपन, गुण-धर्म विपर्यय आदि प्रायः मिलता है। जब मैंने पहली बार 'मेरी धरती मेरे लोग' पढ़ी तो मुझे उसकी बुनावट में एक प्रकार का 'बिबलिकी' अन्दाज लगा था, कुछ-कुछ नीत्शे के 'दज स्पोक जरथुस्त्र' जैसा। इस प्रकार की रहस्यमयता कविता मात्र की प्रकृति में निहित होती है। उसका यह गुण तब और अधिक स्पष्ट होता है जब वह सम्बोधन की भाषा और मुद्रा ग्रहण करती है। यह काव्य-मानसिकता ही धार्मिक पैगम्बरता है। जितना बड़ा कवि होगा यह तटस्थ पवित्रता, बिबलिकी अन्दाज, आदिम रहस्यात्मकता उतने ही स्पष्ट होंगे। 'मेरी धरती मेरे लोग' में प्रकृति पात्र भी है और घटना भी। प्रकृति और मानवता की सारी संज्ञाएँ शेषेन्द्र की सृजनात्मक प्रक्रिया में से गुजरकर जिस प्रकार की रचनाधर्मिता ग्रहण कर लेते हैं वह देखते ही बनता है, प्रत्येक बड़ा कवि सूत्रात्मक होने के लिए भी बाध्य होता है क्योंकि विराट की प्रस्तुति बिन्दु के द्वारा ही सम्भव हुआ करती है।

'एक पक्षी के गीत से मैं अरण्य की थाह पा लेता हूँ/या फिर एक निर्झर से।'

'उठता है प्रत्यूष से एक हाथ/काल के श्रमिक का हाथ/वह बढ़ता है और जन-जीवन के क्षेत्रों के शोणित और स्वेद में उतर कर फिर उठता है/फिर वह दिगन्त तक छिड़कता चला जाता है ।'

'मैं धान्य जन्मा हूँ और धान्य के लिए जन्मा हूँ और मरणोपरान्त धान्य में ही समा जाऊँगा ।'

कविता की प्रकृति बिम्बात्मक होती है परन्तु प्रभाव वह प्रतीक का देना चाहती है । जिस कवि में बिम्ब और प्रतीक का जितना कम पार्थक्य होता है वह कवि उतना ही सार्थक होता है । शैषेन्द्र इस अर्थ में एक अच्छे उदाहरण हो सकते हैं । काव्य-बिम्ब के स्तर तक विचार, भाषा तथा आत्म और पर सभी का बोध बना रहता है परन्तु प्रतीक तो निर्भाव की स्थिति है । विभिन्न सत्यों के बिम्ब अन्त में ऋत्-प्रतीक में परिणत होते हैं इसीलिए प्रतीक, काव्यात्मकता का ऐसा साक्षात् होता है जो अनुभव तो किया जा सकता है परन्तु सम्प्रेषित नहीं । तभी तो अर्थ, बिम्ब के स्तर पर ही सम्भव है; प्रतीक तो अर्थातीत, गुणातीत सभी कुछ है । इसके आगे की स्थिति है प्रतीक का प्रतीति या आकार-हीन हो जाना । उस स्तर पर न कवि होता है और न कविता, क्योंकि वहाँ कुछ नहीं है तब कौन कवि बने और कौन कविता ! वह अभेद की अनभिव्यक्त मानसिकता है । तब कविता रचने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है क्योंकि जो कुछ है और जो कुछ नहीं है—की ऐसी काव्यातीतता है जहाँ कोई इच्छा शेष ही नहीं रह जाती । केवल क्रियाहीन कारण है । इस सम्पद-स्थिति में वेद की नहीं, निर्वेद की मानसिकता होती है ।

काव्य की यह बिम्बात्मक प्रकृति ही काव्य को रूपों, स्थितियों और सम्बन्धों में रूपान्तरित करती चलती है । यही कारण है कि कविता में प्रयुक्त वस्तु या स्थिति केवल अपना ही नहीं बल्कि कई बार तो अपने से सर्वथा विपरीत या विरोधी तत्व, वस्तु या स्थिति का भी प्रतिनिधित्व करती होती है । इसी कारण कविता साधारण पाठक को प्रायः दुर्बोध लगती है । पाठक इसका कारण भाषा समझता है जबकि काव्य में भाषा की सरलता या कठिनता तो ऊपरी सतह है । कविता में रचनात्व का इतना तीव्र तथा विकसित संवेग और दबाव होता है कि भाषा और अर्थ दोनों झनझना उठते हैं । संगीत का जिस प्रकार कोई अर्थ नहीं हुआ करता या आकाश देखने का क्या अर्थ हुआ करता है ? वह तो इस तरह की बातों का प्रभाव ही है जो हमें भाषातीत आनन्द प्रदान करता है । इसी प्रकार काव्य का प्रयोजन भी भाषातीत, अर्थातीत आनन्द की मानसिकता का निर्माण करना है । बिम्बों के स्तर पर इस प्रयोजन की तैयारी होती है ।

अंक, काल में प्रक्षेपण करता है, रेखाएँ दिशाओं की प्रतीति करवाती हैं और शब्द ऊर्ध्वोन्मुखी बनाता है। काल, दिशाएँ और ऊर्ध्व की यह प्रतीकात्मकता ही रचना-विधान की पूर्णाहुति है।

'इन पहाड़ों में न तारीख है, न तिथि।'
'वह एकान्त/जो पर्वतों के वक्ष में सोता है।'
'पृथ्वी, प्रकृति का संग्रहालय है।'
'मेरे मस्तिष्क की झाड़ियों में/एक लाल लोमड़ी घूमती है।'

ऐसे सैकड़ों बिम्ब शेषेन्द्र में हैं जिनके अर्थ सम्भव होने पर भी वे अर्थातीत हैं क्योंकि ये सब प्रतीक सम्भावनाओं से ओतप्रोत हैं। इसलिए काव्य को कला के नहीं बल्कि तात्त्विकता के नियमों से ही समझा जा सकता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कविता, संज्ञा को नहीं बल्कि उसकी भाववाचकता को ही रचती है क्योंकि भाववाचकता को ही प्रतीकत्व दिया जा सकता है, संज्ञा को नहीं।

तत्त्व के सम्बन्ध में विचारणीय यह है कि कविता कब तत्व होती है। ऐसा तब होता है जब कवि और कविता दोनों का ही मनीषी व्यक्तित्व होता है। मनीषी-व्यक्तित्व से तात्पर्य है कि जो अपने उत्तम-पुरुष 'मैं' में भी 'मैं' का नहीं बल्कि समस्त जैविकता और चराचर का प्रतिनिधित्व कर रहा होता है उसे ही मनीषी कहा जाता है क्योंकि वह मनुष्य नहीं, मनुष्यत्व होता है; व्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व होता है। निश्चय ही शेषेन्द्र को इस कसौटी पर भी कसा जा सकता है जबकि अधिकांश कवि और कविता अप्रासंगिक लगने लगते हैं। कविता को अपनी अभिव्यक्ति के लिए ही कवि की आवश्यकता होती है, नहीं तो तात्विक रूप से तो कविता नित्य और सर्व-उपस्थित है ही। उसे जानने के लिए ही हमें कवि की अपेक्षा हुआ करती है। शेषेन्द्र में यह उत्तम-पुरुष 'मैं' प्रखर रूप में मिल जाएगा बल्कि एक प्रकार से उनकी यही शैली है। वैसे सामान्यतः भी कविता 'मैं' प्रधान ही होती है परन्तु काव्यात्मक प्रयोजन को देखते हुए यह 'मैं' शेषेन्द्र के काव्य का न होकर पूरे समाज, देश और काल का है इसलिए उनके उदात्ततम प्रकृति बिम्बों से लेकर आक्रोशमयी राजनीतिक उक्तियों, बेबाक निदानों तक से हमारा भाव-तादात्म्य सहज ही होता चलता है। थोड़े ध्यान से देखने पर 'मेरी धरती मेरे लोग' और 'गुरिल्ला' की भाषाई एवम् बिम्बात्मक भिन्नता विलुप्त ही नहीं हो जाती बल्कि तदाकृत हो उठती है। शेषेन्द्र को एक कवि के रूप में यह चिन्ता बराबर रहती है कि कविता अपने स्वरूप और प्रयोजन दोनों में ही कविता हो। साथ ही वैचारिकता के निरूपण

में रूमानीजन का आभास होने पर भी केन्द्रीय शक्ति के रूप में मनुष्य के विराट-पुरुष को ही प्रस्थापित होना चाहिए। अर्जुन के मत्स्य-भेदन की भाँति ही शेषेन्द्र का काव्य-कौशल शब्द-बेध और लक्ष्य-बेध दोनों ही है। कविता अपनी अभिव्यक्ति के लिए जिस कवि को माध्यम रूप में चुनती है वह उस कवि की प्रकृति, गुण-धर्म को भी किसी सीमा तक ग्रहण कर लेती है, परन्तु केवल आरम्भिक स्तर तक ही। कबीर में वह तेवरवाली हो जाती है तो तुलसी में आग्रहशीला। जयदेव, मीरा और विद्यापति में वह चिन्मयी-माधवी हो उठती है तो किसी में औघड़ स्वरूपा। चूंकि मूलभूत रूप में ये सब काव्य हैं इसलिए रस-निष्पत्ति के क्षणों में, आनन्द के मुहूर्त में ये कवि और इनके सारे आवरण सब कुछ पीछे छूट जाते हैं। भेद, देश के स्तर पर हुआ करता है; काल तो अभेद की स्थिति हैं। उस अभेद के स्तर पर काव्य का निरानन्द स्वरूप हमें आबद्ध कर लेता है—वैयक्तिक रूप में भी और सामाजिक रूप में भी। शेषेन्द्र में भी एक प्रकार की आग्रहवृत्ति है और इसका कारण उनका राजनीतिक चिन्तन है। 'इन डिफेन्स ऑफ पीपुल एण्ड पोएट्री' में वह राजनीति, समाज, कला और काव्य पर एक रचनाकार की हैसियत से विचार करते हैं। उनके कवि की वैचारिक मानसिकता का पूरा परिचय इस पुस्तिका में हमें मिलता है। सृजनात्मकता के स्तर पर वह बारम्बार इतिहास, समाज और राजनीति पर कभी आर्षवाणी (मेरी धरती : मेरे लोग) और कभी आक्रोश-उद्‌घोष (गुरिल्ला) में आह्वान करते हैं, प्रहार करते हैं। इसीलिए शेषेन्द्र की कविता काव्यात्मक निवेदन न होकर काव्यात्मक-आक्रमण जैसी लगती है। इस स्थिति में इसकी पूरी गुंजाइश थी की उनकी यह दुर्दमनीय आग्रहवृत्ति तथा निर्धूम ऊर्जा उन्हें काव्यात्मकता से ही बाहर ले जा सकती थी। ऐसा प्रायः धार्मिक और राजनीतिक आग्रही-कविता के साथ हुआ है पर शेषेन्द्र अपने कवि को हर बार इस खतरे के बिन्दु तक ले जाते हैं और हर बार बिना साँस टूटे खतरे की इस ढैया को छूकर वापस अपनी काव्यात्मक तक लौट आते हैं। फलतः यह दुर्दमनीयता ही उन्हें विशिष्ट कवि बनाती है। यह प्रश्न किया जा सकता है कि इस दुर्दमनीयता का उत्स क्या और कहाँ है? सामान्यतः प्रत्येक की ऊर्जा के स्रोत भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं परन्तु मोटे तौर पर अनुभव और अध्ययन को प्रमुख उत्स माना जा सकता है। अनुभव के स्तर पर उनके इस उत्स के बारे में वे ही बता सकते हैं जो उनसे इस स्तर पर जुड़े हुए हों, मैं नहीं; परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि आजकल भले ही वह राजसी परिवेश में दिखें—परन्तु जीवन के आरम्भ में वह अपनी माटी और मनुष्य से जुड़े हुए रहे हैं। उसकी तीव्र गन्ध आज भी स्मृति में

है जो कि उनकी कविता और उनके चिन्तन में मुखर होती रहती है। वैसे इतना मैं जानता हूँ कि शेषेन्द्र का कवि और विचारक आज के माटीय और मानवीय उत्स से वैचारिक तथा रचनात्मक स्तर के साथ-साथ क्रियात्मक स्तर पर भी जुड़ते रहे हैं और इसका बाह्य प्रमाण उनका 'कवि-सेना' वाला आन्दोलन है। यह काव्यात्मक आन्दोलन इस अर्थ में चकित कर देने वाला है कि सारे सामाजिक वैषम्य, वर्गीय-चेतना, आर्थिक-शोषण की विरूपता-वाली राजनीति को रेखांकित करते हुए भी शेषेन्द्र उसे काव्यात्मक आन्दोलन बनाये रख सके। मैं नहीं जानता कि काव्य का ऐसा आन्दोलनात्मक पक्ष किसी अन्य भारतीय भाषा में है या नहीं, पर हिन्दी में तो नहीं ही है और इसे हिन्दी में आना चाहिए।

श्री शेषेन्द्र शर्मा, निर्वेद के नहीं, शक्ति के तथा तनाव के कवि हैं। कवि रूप में सदाशिव भी हैं तथा रुद्रमूर्ति भी। शेषेन्द्र में प्रकृति है पर वह मात्र उपादान भाव में नहीं बल्कि रम्य और परुष दोनों रूपों में हैं इसलिए वह सक्रिय शक्ति लगती है। चीजों को देखने की आर्ष-दृष्टि उन्हें अपने सर्वप्रिय कवि वाल्मीकि से तथा अन्य देशी-विदेशी क्लासिकीय कवियों से प्राप्त हुई है, इसीलिए वह आद्यन्त क्लासिकीय कवि ही कहे जा सकते हैं। वह जानते हैं कि सृष्टि का मूलाधार मनुष्य है, जो निरन्तर उदात्त होने के प्रक्रिया में जयी भी होता है तो पराजित भी। मनुष्य की यह अदम्य इच्छा ही सदा से क्लासिकीय काव्य का केन्द्रीय सरोकार रही है। शेषेन्द्र का सारा काव्य, मनुष्य की त्रास-गाथा का महाकाव्य है। सामाजिक वैषम्य से घिरे मनुष्य को विवश देखकर शेषेन्द्र अपनी भाषा को प्रायः परशुराम की भाँति आयुध रूप में प्रयुक्त करने के लिए रचनात्मक बाध्यता अनुभव करते हैं कि तभी एक फूल, एक पक्षी उनके इस आक्रोश को वाल्मीकि की प्रशान्तता की प्रतीति करा जाता है। कई बार मिलने पर वह मुझे कवि से अधिक मूर्तिकार भी लगे हैं, वह भी ऐसे कि जो आन्ध्र-देश की वनस्पतिहीन चट्टानों से मानवीय आक्रोश की भूधराकार मूर्तियाँ तराश रहे हैं। आवेग को जब मूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और तब जो गति की विकलता तथा ठहराव की स्थिर प्रशान्तता की एक साथ विपरीत प्रतीति होती है, और एक अकुलाहट होती है, यही शेषेन्द्र की कविता पढ़कर होती है। प्रत्येक सार्थक कवि अपनी समकालीनता की सम्पूर्ण सम्भावनाओं को अर्जित एवम् प्रयुक्त करने के लिए प्राचीन को प्रमाण रूप में अपने साथ लिये चलता है इसलिए सार्थक कवि स्वयं अपना ही प्रमाण एवम् उदाहरण होता है क्योंकि वह अद्वितीय होता है।

हम उसे समझने के लिए भले ही किसी अन्य को रखकर देखें-परखें परन्तु अगत्या आप्त-वाक्य वह स्वयं ही होगा अस्तु—

श्री शेषेन्द्र शर्मा के काव्य के बारे में जैसा सम्यक विवेचन होना चाहिए, शायद उतनी पात्रता मुझमें नहीं थी। उन्हें और उनके काव्य-ग्रन्थों को प्रस्तुत करने के लिए जितना पुरोवाक आवश्यक था, उसकी चेष्टा ही की है, वह भी संकोच के साथ। प्रस्तुत संकलन में उनके चार काव्य-ग्रन्थ हैं—'मेरी धरती मेरे लोग' 'दहकता सूरज', 'गुरिल्ला' और 'प्रेम-पत्र'। 'मेरी धरती मेरे लोग' उनकी महाकाव्यात्मक रचना है। 'महाकाव्य' के बारे में शेषेन्द्र की धारणा विचारणीय है। इस सम्बन्ध में उन्होंने 'इन डिफेन्स ऑफ पीपुल एण्ड पोएट्री' में विचार किया है। वह पारम्परिक परिभाषा और परिकल्पना का विकास है। इतना तो माना ही जाना चाहिए कि आज का महाकाव्य, पूर्ववर्ती महाकाव्यों जैसा सम्भव नहीं—न गुण, न धर्म और न आकार किसी भी रूप में नहीं। आज का युग महाकाव्य का नहीं बल्कि महाकाव्यात्मकता का है और यह आकार में नहीं बल्कि दृष्टि में हमें खोजना होगा। 'गुरिल्ला' एक लम्बी कविता है, जिसकी मानसिकता भले ही आपात्कालीन हो परन्तु उसका शाक्त-सम्बोधन सार्वकालीन है इसलिए उसमें तेजसता है। 'दहकता सूरज' उनकी स्फुट कविताओं का संग्रह है जिसमें से कुछ कविताएँ यहाँ संकलित हैं। इसी प्रकार 'प्रेम-पत्र' भी सम्पादित रूप में है। इसके नाम से ही बहुत कुछ व्यंजित हो जाता है।

भूमिका आलोचना नहीं होती और न ही अतिरंजना। वैसे भी ऐसी कोई इच्छा मरी थी भी नहीं। श्री शेषेन्द्र शर्मा से जब सन्'७७ में अनायास परिचय हुआ तो प्रथम बार तो उनकी गान्धर्वी सौम्यता से प्रभावित हुआ था लेकिन उनके कवि-व्यक्तित्व से उत्तरोत्तर परिचिति बढ़ी। इन विगत वर्षों में जितना जानने, सुनने और समझने का अवसर मिला वह मेरे लिए अप्रतिम है। लेकिन जब इस संकलन के सम्पादन का भार मुझे दिया गया तो समझ नहीं सका कि इस आत्मीयता को कैसे अस्वीकारूँ ? तभी तो मैं नहीं कह सकता कि शेषेन्द्र की वर्चस्विता के साथ योग्य और यथोचित व्यवहार कर सका कि नहीं पर यदि हिन्दी के माध्यम से शेषेन्द्र को भारतीय-काव्य के खुले एवम् विस्तृत आकाश की प्रतीति हो सके तो मेरा तथा इस संकलन का दायित्व सार्थक हो सकेगा।

इति नमस्कारान्ते—

२० अक्तूबर '८३
८८ ए लूकरगंज
इलाहाबाद—२११००१

दो शब्द अपनी ओर से

अपने बारे में लिखना किसी के लिए भी बहुत कठिन होता है, और उससे भी अधिक कठिन है पीछे छोड़े काल तथा अवधि में पुनः प्रवेश। प्रस्तुत संकलन की कविताएँ तूफ़ान के गुजर जाने के बाद वृक्ष की डाल पर भीगे बैठे वन-पाखियों-सी हैं। हम नहीं जानते कि वे वहाँ कब आये और उनमें से कौन पहले आया, क्योंकि हम आँधी की प्रचण्डता की तात्त्विक अस्तव्यस्तता में उलझे हुए थे। समय के इस अन्तराल में उन्हें काल-क्रम के पिंजरे में कैद करना न तो उचित है और न ही न्यायसंगत। आईने से धूल की पतली पर्त हटा कर आतिश-बाजी की तरह विस्फोटित घटनाओं की कहीं-कहीं धुँधली-आकृतियाँ उभरती हैं। कविता स्वयं उन्हें आप तक पहुँचाएगी।

मैं इतना कह सकता हूँ कि "ऋतुघोष" के पहले वाक्य से "प्रेम पत्र" के अन्तिम वाक्य तक मेरी रचना एक तरह की आत्मकथा ही है।

जब कभी भी मैंने आवाज उठायी तो अपने लिए नहीं, तेलुगु जगत् के सिर्फ छह करोड़ लोगों के लिए भी नहीं, बल्कि देश के साठ करोड़ लोगों के लिए सदा मेरी आवाज समर्पित रही है। जो बाधाएँ मैं अनुभव कर रहा हूँ, सारा देश भी वही बाधाएँ अनुभव कर रहा है, और मेरी जाति भी—अर्थात् मानवजाति। इस कारण मेरी ज्वाला मेरे देश की जिह्वा है।

पीड़ाओं, बाधाओं, यन्त्रणाओं और बलिदान के बिना महाकाव्य का निर्माण सम्भव नहीं है। "मेरी धरती : मेरे लोग" मेरा रक्त है जिसे मैंने अपनी आयु, पाण्डित्य, प्रतिभा, और सर्वस्व से निचोड़ कर अनुभव और ज्ञान के दो चक्षुओं से विश्व के लोगों, उनके इतिहास, उनकी हार-जीत, उनके उत्थान-पतन, उनके भूत-भविष्य और वर्तमान को देखते हुए, ब्रह्माण्ड-दृश्य से यह सार जुटाया है। मेरे लिए यह गीत इस शताब्दी का उपहार है।

मैं हिन्दी के उन सभी मूर्धन्य आलोचक-विद्वानों, जैसे सर्वश्री स्व० डा० भगवतशरण उपाध्याय, डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, डा० धर्मवीर भारती, डा० प्रेमशंकर, श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, डा० केदारनाथ लाभ, श्री गंगाशरण

सिंह, डा० रमासिंह, डा० आई० पाण्डुरंग राव, चि० रा० सुब्रह्मण्यम्, डा० धनंजय वर्मा, डा० विनय, डा० नवलकिशोर, डा० प्रमोद वर्मा, डा० पी० वी० शर्मा, डा० विजेन्द्रनारायण सिंह, डा० तैलंग, श्री सुधाकर पाण्डेय, श्री गुलाब खण्डेलवाल, डा० सरजू कृष्णमूर्ति और डा० महेन्द्र कार्तिकेय आदि का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अपनी बेलाग प्रतिक्रियाओं से मेरा हौसला बढ़ाया। इन विद्वानों में अधिकांश से तो मैं अभी तक मिला भी नहीं हूँ। मैं हिन्दी की उन सभी पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों का भी ऋणी हूँ जिन्होंने मेरी कविताओं के अनुवाद और प्रकाशित पुस्तकों पर आलोचनाएँ प्रकाशित करके मुझे प्रोत्साहित किया।

पाठकों के मेरे पास ढेरों पत्र आते रहते हैं, जिनमें आग्रह रहता है कि मैं अपनी कविताओं के हिन्दी अनुवादों को एकत्र करके एक संग्रह प्रकाशित कराऊँ। यों तो मेरी प्रत्येक पुस्तक चार भाषाओं—तेलुगु, अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू में एक साथ प्रकाशित होती रही हैं। ये मेरे परिवेश की भाषाएँ हैं। "मेरी धरती : मेरे लोग", "दहकता सूरज", "गुरिल्ला" और "प्रेमपत्र", हिन्दी में अलग-अलग प्रकाशित हो चुकी हैं। मैं प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ कि हिन्दी में अनूदित मेरी पुस्तकों का यह संग्रह प्रकाशित होने जा रहा है।—

मैंने हमेशा यही सोचा कि हिन्दी मेरी अपनी भाषा है। हिन्दी मेरे राष्ट्र की भाषा है। मेरी तो यह निश्चित राय है कि क्षेत्रीय भाषाओं का अच्छा साहित्य आवश्यक रूप से हिन्दी में जाना चाहिए। हिन्दी आज पश्चिमी देशों की किसी भी भाषा के समकक्ष सामर्थ्यवान् है और काव्य, गद्य तथा साहित्य की अन्य विधाओं के मूल्यांकन के लिए इससे सशक्त कोई अन्य भाषा नहीं। इसी-लिए भारतीय भाषा परिवार में हिन्दी का स्थान शीर्षस्थ है।

हिन्दी के शीर्षस्थ कवि श्री नरेश मेहता का मैं किन शब्दों में आभार प्रकट करूँ जिन्होंने इस संग्रह में सम्मिलित रचनाओं के चुनाव, क्रम में बाँधने और सम्पादन की कष्टप्रद प्रक्रिया को झेला। मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है कि उन जैसे एक मनीषी-कवि के द्वारा मेरा संकलन सम्पादित हो रहा है और उसकी भूमिका भी उन्हीं के हाथों लिखी जा रही है।

प्रस्तुत संकलन में ली गयी सामग्री के अनुवाद का श्रेय मेरे बहुत पुराने मित्र श्री ओमप्रकाश 'निर्मल' को जाता है। यहाँ मैं यह भी जोड़ना चाहूँगा कि श्री 'निर्मल' ने लगभग एक दशक तक कड़ी मेहनत करके मेरी कृतियाँ हिन्दी पाठकों तक पहुँचायी हैं अतः मैं उनका ऋणी हूँ।

लोकभारती प्रकाशन और विशेष रूप से श्री दिनेशचन्द्र ग्रोवर के प्रति भी मैं अपना हार्दिक आभार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता जिन्होंने इस संकलन के प्रकाशन का गुरुतर भार अपने कंधों पर लिया है।

—शेषेन्द्र शर्मा

ज्ञानबाग पैलेस, गोशामहल,
हैदराबाद—५०००१२

मेरी धरती : मेरे लोग

प्रथम सर्ग

उठता है प्रत्यूष से एक हाथ/काल के श्रमिक का हाथ/वह बढ़ता है और जन-जीवन के क्षेत्रों के शोणित और स्वेद में उतर कर फिर उठता है/ फिर वह दिगन्तों तक सिन्दूर छिड़कता ही चला जाता है।

आँख खुलते ही मैं अपने छोटे-से वातास से/हवा में तैरते पक्षियों और मेघों को 'सुप्रभात' कहता हूँ/मैं उन पर एक निःश्वास फेंकता हूँ/ उनके पंख ही मेरे समस्त स्वप्न हैं। मैं सूर्य का प्रिय उपहार—अपना दिवस-उनके साथ बाँट लेता हूँ।

मैं धान्य-जन्मा हूँ और धान्य के लिए जीवित हूँ तथा मरणोपरान्त धान्य में ही समा जाऊँगा/मैंने ध्वनियों के अणुओं से कविताएँ रचीं जैसे रेत-कणों से काँच के पात्र निर्मित किये जाते हैं और तल्लीन हो कर उन्हें धुनों में ढाला।

मैंने अपने देश की नारी को सँवारने के लिए उस सूत से/जिसमें रंगों के स्वप्न बसे हैं/साड़ियाँ बुनीं और उनको तितलियों की भाँति जन-जीवन के चरागाहों में वितरित कर दिया।

मानवता की पताकाओं को फहराने के लिए/मैंने पोत निर्मित किये/ और उन्हें सागरों में उतार दिया।

मैंने स्वप्नों में पथ बनाये/मेघों में भवन उठाये और रिपुओं के सीनों में/अपने जीवन से/देश की सीमाओं पर विशाल प्राचीरें खड़ी कर दीं।

मैंने चट्टानों को आकार, रूप और शब्दों में बदला/और उन्हें मूकता से उन्मुक्त किया/मानवीय जीवन के हर क्षेत्र को उर्वर बनाया/ वह कौन-सा सौन्दर्य है जो मैंने इन हाथों से रूपायित नहीं किया/संसार में कौन-सी ऐसी वस्तु है जो इन हाथों के समक्ष समर्पित न हुई हो/किन्तु फिर भी ये हाथ सदैव खाली ही रहे।

विगत इतिहास में मेरा कोई स्थान नहीं था/और वर्तमान इतिहास

में कर्त्तव्य निष्ठा का अभाव है/मैंने बाँध क्यों बाँधे ? भूमि को उर्वरा क्यों बनाया ? मैं नहीं जानता !

मैं शून्य में जिया किन्तु साथ चला/मानव एक चलता-फिरता वृक्ष है जिसकी जड़ें पावों में बदल गयी हैं/यदि मैं वृक्ष ही रहता तो प्रति वर्ष मुझ पर वसन्त तो आता/किन्तु जबसे आदमी बना/पृथ्वी तल के सारे वसन्त मुझसे विमुख हो गये हैं।

मेरे बाल्यकाल से वृक्ष उग रहे हैं/पथ चल रहे हैं/गाँव और नगर आनन्द-मग्न हो उछल और नाच रहे हैं/किन्तु अपने देश में मैं एक खाली हाथ याथावर हूँ/यहाँ मेरा अपना कुछ भी नहीं/केवल स्मृतियाँ मेरी अनुगामी हैं/अपनी विदग्ध रक्ताभ आकांक्षाओं की पताका लिये/मैं इस शोभायात्रा का नेता हूँ।

क्षण केवल काल का अनुगामी नहीं है/एक क्षण ऐसा भी होता है/जो सम्पूर्ण मानव-इतिहास को परिवर्तित करने में सक्षम होता है/मैं स्वयं को निःशब्द, निष्क्रिय समाधि में लीन नहीं कर सकता/मैं पर्वत-ब्रह्म की तरह जड़ नहीं रह सकता/मैं उस समय को अपनी निःश्वासों को समर्पित नहीं कर सकता/जो मुझे खड़ा पुकार रहा है।

याद रखो ! जो जीवन समुद्रों और पहाड़ों के साथ चलता है/उसके समक्ष तूफानों की क्या हस्ती है/भयानक से भयानक तूफान भी उड़ जाते हैं/जीवन संघर्ष तो केवल भिनभिनाती मक्खियों की तरह है।

देखो, देखो ! सूर्य स्वेद-मधु पान करके और भी तेजस्वी हो रहा है/ और ज्योति की लक्ष-लक्ष दरातियाँ और हथौड़े प्रदान कर रहा है।

इतिहास में ये विध्वंसक हवाएँ/अध्यायों में उड़ती हैं/इन हवाओं के हाथों में मैं एक पेड़ की शाखा की तरह तड़पता हुआ नहीं रह सकता/ मुझसे मत पूछो कि मैं अशान्त क्यों हूँ ? समुद्र से पूछो कि वह अशान्त क्यों है ? यह मत पूछो कि मैं क्रुद्ध क्यों हूँ ? तूफान से इसका उत्तर माँगो।

जान लो कि समय मेरे लिए मात्र एक कागज है/जिस पर मैं/मानव-जगत् के लिए अपने स्वप्नों को अंकित करता हूँ/मनुष्य में से एक महान् राक्षसी शक्ति को निकाल कर/उसे शिल्पित करके/संसार के

समक्ष खड़ा करता हूँ/मेरा अहम् चीखता-पुकारता/रीढ़ की हड्डी को तोड़ेगा और क्षितिज-रेख को चीर कर/धरती पर एक नया युग फेंकेगा/वह मनुष्य पर अशान्ति थोपेगा और लाल गर्म शोणित बन कर/गाँवों की गलियों में प्रवाहित होगा/और मनुष्य को समुद्र में परिवर्तित करके उसे गरजता हुआ तूफान बनाएगा।

मैं अपनी चतुर्बाही कविताओं से/अपने देश को वह चेतना प्रदान करूँगा....../शताब्दियाँ अब उस भाषा में बोलेंगी/जिसे मैंने अरण्यों के गर्भों से सीखा है/मेरा शब्द भावी पीढ़ियों की निधि होगा/देश और राष्ट्र ही मेरी कविताओं के अधिकारी होंगे।

पिछला वसन्त एक नदी की तरह बह गया/मैं कुछ नहीं जानता कि किन वनों में भटक कर वह सो गया।

किन्तु वसन्त फिर लौट आया/मेरे घर के पिछवाड़े के आम्र वृक्ष को खोजता हुआ/विश्व में प्रत्येक वस्तु प्रवाहित है/किन्तु वह सौंदर्य की खोज में पुनः-पुनः लौटती रहती है।

वृक्षों की पत्तियों के पीछे/मैं पक्षियों के पदचिह्न पाता हूँ/जो गत वर्ष उड़ गये क्षणों के निशान हैं।

मेरी इस थकी यात्रा में वृक्ष को छाया मेरी मधुशाला है और कोई गिरा हुआ पुष्प/मेरा अभ्यागत है।

यही वसन्त तो वर्ष का वह पहला स्वप्न है जिसमें/मैं अपने देश के शरीर पर प्रभातपूर्ण स्वप्न की तरह/देश के अरण्यों से/अपनी नग्नता को ढाँकते हुए/नदियों को पगड़ी की तरह लपेटे हुए/अपने कंधों पर राहों को उठाये हुए/अपने मार्ग पर अग्रसर हूँ/मैं चलता हूँ/रोते हुए खेतों को सान्त्वना देता हुआ/मैं चलता हूँ/ मेरे देश की सदियों से रूप-वाणी को प्रतीक्षित पहाड़ियों को/रूपायित करता हुआ/सिंहों, ऊँटों, श्रमिकों, कृषकों, प्रेमियों और इतिहासों में/ जो कि उनके मुकुटों के समान हैं।

प्रातः किरणों के भार से लदी बैलगाड़ी में/सूर्य चला आ रहा है/वह वृक्ष/जिसने मुझे पहले पहल देख कर आँसू टपकाये थे/अब मेरे स्वप्न पर फूल बरसाता है।

दूसरा सर्ग

तुम्हारा संदेश सुनाने के लिए कुमुदिनी अपने ओठ प्रस्फुटित कर रही है/और मेरे प्रति तुम्हारी ललक को प्रकट करने के लिए पत्तियाँ/कानों में सरगोशियाँ कर रही हैं।

तुम्हारे और अपने जनों के मध्य/अपने भग्न हृदय के साथ/बिना सोये/मैंने अनगिनत रातें तारांकित आकाश को ताकते हुए गुजार दीं।

मेरी आँखें/तुम्हें और मेरे देश को/दो आलोकित दीपों की तरह/अपने आशाओं के द्वीपों की तलाश में ले जाएँगी/जहाँ रेतीले तटों पर मेरे लोग निर्बंध और प्रसन्न चित्त/वात्याचक्र की तरह मटरगश्ती कर रहे हैं/और अपने दाँतों से फलों के गूदों को चिचोड़ते हुए/सुन्दर वन्य-पशुओं की भाँति विचर रहे हैं।

मैं एक तूफान हूँ/जो समुद्रों से पलायन करके/तुम्हारी वक्षस्थली के नारिकेल वनों में शरण लेता हूँ/जहाँ मेरे गाँव एक दूसरे से स्वप्नों और रंगों की भाषा में बतियाते हैं/जहाँ मेरा देश पोतों के भार से रहित सागर की लहरों-सा तरंगायित होता है/जहाँ प्रात:किरण मेरे लोगों के असंख्य स्वप्नों की न हत्या करती है न मारती है/जहाँ मैंने स्वयं को विशाल हरे-भरे चरागाहों की तरह अपने देश के बच्चों की केलि-क्रीड़ा के लिए बिछा दिया है।

ओ परमप्रिय !

हमें वहाँ चलना चाहिए !

जहाँ मेरे देश के पथ चैत्र मास के फूलों में विचरते हैं/और रेलों की तरह/मेरे लोगों को महोत्सवों के यात्रियों तक ले जाते हैं/मेरे प्रिय ! हमें व्यर्थ नहीं बैठना चाहिए/आओ, फसल कटने के इस उत्सव में/अपनी दरातियों के साथ/हम भी अपने महाजनों में सम्मिलित हो जाएँ।

राक्षसी नगर के जबड़ों में समाने के पूर्व/मैं समुद्र तट की सुनहरी

बालू पर/अपने अवयवों को विश्रांति देता हुआ/अपनी दृष्टि को अशान्त नील सागर की लहरों के शोर से परे प्रसारित करता था/अपने दृष्टि संचार की सीमा के परे/मैं वस्तुओं और भूमियों को एक अनिर्वचनीय मधुरिमा में स्नान करता था ...क्या वह रंगून, सिंगापूर या बैंकाक है ? या वह महाजल खंड है/जो नीलम से द्रव रूप में परिवर्तित हो कर पेसिफिक सागर बन गया है/या कि मेरा गगन-विहारी नील स्वप्न है/ जो अपने पंख गँवा कर एकाएक भूमि पर गिर पड़ा है ?

धरती के वाक्य में समुद्र विराम, अर्धविराम की तरह हैं/वे दौड़ती हुई सभ्यताओं को अल्पावधि के लिए विश्रांति देते हैं/वे पुरानी साँस छोड़ कर नयी साँस लेने का अवसर देते हैं/वे नये अलंकरण और रूप दे कर नये तटों से परिचित कराते हैं।

समुद्र दवात हैं/जिन्हें पृथ्वी अपने प्रणय-पत्रों के लेखन के लिए प्रयुक्त करती है।

अक्षर/जो साम्राज्यों, सभ्यताओं और विज्ञान के परिमल हैं/हवाएँ उन्हें/उन दवातों से उड़ा लाती हैं/ये पुरातन हवाएँ/नगरों को आलोकित करती हैं और देशों पर शासन करती हैं।

यह वही स्याही है जिससे मानव-इतिहास लिखा गया/मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए समय/मानव-रचित कविताओं को निगल जाता है/मैंने पुरानी कविताओं को खाया/और फिर उनमें से अनपचे अंशों को वमन कर दिया/अब मुझे नये शब्दों की भूख है।

अब मैं दृष्टि की सीमा से परे गरजते हुए शून्य से/मेरे समन्दरों से परे सरगोशियाँ करती नीलिमा से/मेरे नक्षत्रों से परे बुलन्द ऊँचाइयों से/मेरे हाथों की पहुँच से परे अपने अन्तरतम की गहराइयों से/जिससे मेरे समकालीन अपरिचित हैं/ऐसी सामग्री से/मैं अपनी कविताएँ बुनता हूँ।

जो नगर मुझे पचा नहीं सके उनसे परे/जहाँ मेरी आत्मा गुनगुनी कामनाओं को सेती है/उन जंगलों से परे/जो सृष्टि की समस्त रचनाओं को अपने बाहुमंडल में समेटे हुए हैं/उस बिन्दु से परे/जिसकी एक खंड रेखा मात्र मानव-दृष्टि की पकड़ में आती है/और जिससे परे मेरा तीसरा नेत्र छलांग लगा कर पहुँचना चाहता है/—वहाँ—मेरी प्रतीक्षा करता है—सदियों से—मेरा नील सागर।··· ···

तीसरा सर्ग

हैदराबाद नगर को पीछे छोड़ कर/हवा में उड़ जाना/मेरी आत्मा के फेफड़ों को कितनी विश्रांति दे रहा है।

कई महीनों के बाद विचारों ने आज फिर से साँस ली है—'उस भयानक नगर के विषाक्त वायुमण्डल में श्वास लेते हुए यह प्राणी इतने काल तक कैसे जीवित रह सका' यह कहते हुए नीलगिरि के वृक्षों ने मुझे/अपनी ममतालु गोद में समेट लिया।

हैदराबाद की सुबह मे एक फूल की तरह मैं जागता हूँ/और उसकी राहों पर चलते हुए/मैं एक खौलता हुआ ज्वालामुखी बन जाता हूँ/विस्फोट के लिए प्रस्तुत/मैं चलता हूँ/स्वातंत्र्योत्तर सभ्यता और कविता से अपनी धोती के छोर को बचाते हुए/जिन्हें हैदराबाद का दिवस/एक पुराने रोगी की तरह रोज वमन करता है।

इन्हीं मार्गों पर कविता लिखनी चाहिए/सरकारी छाप वाले चेहरों को देख कर/मेरे शरीर में प्रत्येक क्षण/तोपें दगनी शुरू हो जाती हैं।

जब मुझमें तोपों की बारूद समाप्त हो जाती है/तब मैं दयनीय हो कर वृक्षों से याचना करता हूँ—'मुझे कविता नहीं चाहिए, मुझे हजारों भूकम्पों से भरा बम चाहिए'/इन्हीं पथों पर मुझ जैसे कितने ज्वालामुखी नहीं चल रहे होंगे।

निकृष्ट सभ्यता की अंगारक हवा में श्वास लेते हुए/ये वृक्ष/फूलों को क्यों खिलाते हैं? ये क्यों नहीं बंदूक की गोलियाँ धारण करते? मैं चीखता हूँ।

यह नगर मेरा विष-पात्र है/भाग्य ने जिसे मेरे हाथों में बलपूर्वक थमा दिया/पीने को विवश करके/इसी में है मेरा सम्पूर्ण विष और नशा/यहीं मैंने अपना संसार कई बार खोया और पाया/यहीं मेरा जीवन/लाभ और हानि के अन्तहीन व्यापार में/जीवन के वधिक के हाथों में/

इन्हीं रास्तों पर मैं एक चीखती हुई आँधी की तरह भागा हूँ/और खोये पाल जैसी नाव की तरह डूबा हूँ ।

लेकिन मैं एक आँधी हूँ/मुझे गर्हित नसीहतें मत दो/मैं जा रहा हूँ/ अपनी स्मृतियों को बाहुओं में उठाये हुए/घावों के लिए मरहम ढूँढ़ता हुआ ।

यहाँ जीवन किसी को बख्शता नहीं/वह एक आदमी की आग दूसरे में भड़काता है ।

ऐ पंछी ! यहाँ तुम अपने गीत मत गाओ/उड़ जाओ/अपने शाद्वल वनों को खोजते हुए ।

मानव नगरी में हजारों लोगों की हलचल के अनन्तर/काल का हाथ सर्वोपरि है/सिर्फ काल की आवाज सुनायी देती है/अकेली-अद्वितीय आवाज/कोटिशः आवाजों से तीव्रतर/नगर की समस्त घड़ियों में वह अपने हाथ की शक्तिशाली उँगलियों को प्रदर्शित करता है/और निर्दयता-पूर्वक अपने अपराजेय हाथों से मनुष्य की आवाज का गला घोंट देता है ।

वह मनुष्य के वक्ष पर एक लौह-गिद्ध की भाँति उतरता है/एक भयानक गिद्ध की तरह ।

किन्तु यहाँ इन पहाड़ों में/न कोई तारीख है न तिथि/कोई अन्य मानव प्राणी भी नहीं है/समय जो यहाँ तक मेरा पीछा करता हुआ आया है/गिर पड़ा/सुरीली और कोंपलों से भरी हुई इन पहाड़ी घाटियों में/ पीछा करने में अक्षम हो कर ।

अजनबी वृक्ष/अजनबी पंछी/मुसकुराते और स्वछंद पहाड़/और वह एकान्त/जो पर्वतों के वक्ष में सोता है/ये सब एक हो कर मकड़ी की तरह खामोशी का जाल बुनते हैं/जहाँ काल एक छोटी मक्खी का तरह फँस कर मर जाता है ।

इस जगह की भावनाएँ उस फूल की तरह हैं/जिसे पहले किसी ने कभी नहीं सूँघा/यहाँ वृक्षाग्र सिर्फ आँखों से छुए जाते हैं/हाथों से नहीं/ यहाँ वृक्षों की चोटियाँ आकाश के नीले कागज पर ब्रुश करती हैं/जिस पर एक विशालकाय धवल मेघ/लम्बे डग भरता हुआ/गुजर जाता है/ अलस हवा/नीले शून्य में/फूलों की श्वासों का एक महीन जाल बुनती है ।

अपूर्व अननुभूत आनन्द की शक्ति में मनुष्य/राग में परिवर्तित हो कर/ पर्वतों और पंछियों के शरीरों में प्रवाहित होता है/मनुष्य, समय की मुट्ठी से पानी की तरह टपक जाता है।

एक छोटा-सा भी कीट/जो पंखों पर उड़ता है/निष्पाप और पवित्र स्वतंत्रता में/प्रकृति के उदात्त आनन्द को एक मनुष्य के समान अनुभूत करता है/कीट मनुष्य से किसी तरह कम नहीं/इन सीमाओं में—जहाँ पर्वतों का शासन है।

यहाँ मनुष्य के मन, बुद्धि और अहंकार का आधिपत्य नहीं है।

यहाँ केवल अकलुषित, निर्मल प्राणों की अवस्था का ही साम्राज्य है/इसीलिए मैं समय को इन पहाड़ियों में घसीट लाया/और उसे मार डाला है।

बीज में अवस्थित मैंने एक राग सुना/

मुझमें आकांक्षा अंकुरित हुई कि मैं एक बार बाहर आऊँ/सूर्य और आकाश को देखूँ/और निःशब्द के माधुर्य में आश्चर्यामृत का पान करूँ।

मैं वृक्ष बना/उसकी शाखाओं में मैं वृक्ष का स्वप्न बना/अर्थात् स्वयं में राग, रस और गंध का मिश्रण करके फूल बन गया।

क्योंकि स्वप्न बन कर ही मैं अपने भीतर छिपे रहस्यों को देख सकता हूँ/स्वप्न में ही यह रहस्योद्घाटन हुआ कि पृथ्वी, जल और वायु एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न रूप हैं/और इन तीनों का सारतत्व मुझमें है/इस ज्ञानोदय के बाद मैं एक से तीन बन गया।

रंगीन पंख लगा कर मैं तितली बना/और स्वयं का पीछा करते हुए भागने लगा/पत्तों में गोता लगाया/और तोता बन कर निकला/और स्वयं को खाया फल समझ कर।

मैं मछली बना और स्वयं की तटहीनता को भूल कर/तैरने लगा अनजाने तटों की ओर/मैं एक वृक्ष हूँ/यह सब मेरी जीवन-यात्रा है।

पतझड़ मेरे पत्तों में पीलिमा मलता है/हवा मेरे वस्त्राभूषणों को उतारती है/हिमपात मेरी नग्नता पर पवित्र अभिषेक करता है/और मैं एक वृक्ष/पट्टाभिषेक के बाद सम्राट बन कर/तप्त धरती को/शीतल छायाओं की राजसी भेंट प्रदान करता हूँ।

दिन अपने विचारों को नीले आकाश में उड़ा रहा है/सफेद बादलों के टुकड़ों में परिवर्तित करके/धीमी-धीमी हवा मेरे अवयवों में शक्ति-संचार कर रही है/और डाली से लटकता फल/आश्चर्य चकित होकर/वृक्ष की ओर देखता है/जो पुरानी पत्तियों को गिराता और नयी पत्ती को धारण करता निरन्तर बह रहा है।

हिलता हुआ फल वृक्ष के रहस्य के बारे में विचारलीन है/हवा के हल्के से स्पर्श से झड़ती पत्तियों की वर्षा में स्नान करता है/गिरती हुई पत्तियों में रमणीयता की अनुभूति पाता है/सम्भवत: फल एक ऋषि है/जिसने जोवन के अगम्य रहस्यों को जानने के लिए/तपस्या की गहराइयों को छुआ है/ वह मृत्यु में जीवन देखता है/ अन्यथा मृत्यु इतनी सुन्दर कैसे लग सकती है !

एक नग्न शाखा/जिसने अपने पत्ते विसर्जित कर दिये हैं/हजारों वसन्त तपस्या करके भी उसके सौन्दर्य को नहीं पा सकते/अहा ! मैं सौन्दर्य में स्नान कर रहा हूँ/मैं मूर्च्छित हूँ/उन हल्के और गहरे तूफानों की पीड़ाओं से/जो सुन्दरता मुझ पर थोपती हैं।

अहा ! यह वृक्ष एक साकार सौंदर्य है/इसका रहस्य कहाँ है/डाली से लटकता फल सोच रहा है/डाल से झड़ने से पूर्व उसे प्रतीत होता है कि उस वृक्ष का बीज स्वयं उसके अन्दर है/उसका मैं और वृक्ष का मैं एक ही है।

पृथ्वी प्रकृति का संग्रहालय है/जिसमें वनस्पतियों और पशुओं की पीढ़ियाँ अस्तमित होती हैं/हमारी संततियाँ भी/जो पंखहीन पक्षी हैं/अस्तंगत होती हैं/सांध्यकिरण की तरह।

नये गर्भ और बीज में से/नये बच्चों की पीढ़ियाँ उत्पन्न होती हैं/नये चेहरे/ज्योतिमंडल पहन कर/सिर्फ नयी सभ्यता बुनने के लिए/इतिहास के पृष्ठों पर आते हैं/इतिहास जो पोथे सा बढ़ने लगता है/तब तक/जब तक कि काल का क्रूर कुठार/उस पर निर्दयतापूर्वक प्रहार नहीं करता/

स्वेद इतिहास के भीतर एक शाश्वत अन्तर्धारा की तरह बहता रहता है/मानव-यंत्र की मांसपेशियाँ सदैव/एक विशाल काष्ठ-चक्र की तरह/घूमती रहती हैं/लगातार चरमराती हुई/विश्रामहीन और ग्रीस-

रहित/इस चकाचौंध करने वाले बनावटी निर्माण को खड़ा करने के लिए/इतिहास एक मूर्ख वृद्धा की तरह/अपनी पुरातन काँपती आवाज में, मानवीय गाथाओं को दुहराता है/अनादिकाल से/और उसके वार्धक्य के प्रति सहानुभूतिवश मनुष्य/उसे सदा सुनता आया है।

संग्रहालय भरता और रीतता रहता है/भीड़ कमरों में से आती और जाती रहती है/गतिमान हवाओं की तरह/अशांत और आतुर/एक लक्ष्यहीन यात्रा के लिए/पीढ़ी दर पीढ़ी/किन्ही अनदेखे शिखरों की ओर जिन्हें कभी देखा-जाना नहीं/किन्तु वृक्ष, पशु, मनुष्य और कीट जिन्हें स्वप्न में अनुभूत करते रहे हैं/और दूसरी ओर सेना, सरकार, न्यायालय और तानाशाह तथा जनतंत्रवादी वगैरह अपने खोखले ढोल पीट रहे हैं।

हर युग एक तीव्र आकांक्षा का भूखा है/हर युग एक मूर्ख सिद्धान्त के शासन आमंत्रित करता है/और स्वेच्छापूर्वक उसकी सार्वभौमिकता को समर्पित हो जाता है/जबकि ज्ञानशक्ति/नवयुग के अंडों को सेते हुए/देखते हुए/विवेचनात्मक बनी रहती है।

चौथा सर्ग

कविता आ रही है/लाल-लाल अश्व की तरह/मेरे रक्त से नहाये बाण की तरह/एक शहीद के प्राण की तरह/मुझेश्वास नहीं लेने दे रही है।

वह आ रही है शब्द बन कर/अशोका-होटल की खिड़की के विशाल शीशों से/वे सब वृक्ष/वे सब मार्ग/जो पेड़ों में से भाग रहे हैं/वे सब लोग जिन्हें रास्ते ढो रहे हैं/वे सब आकाशों के भार/जिन्हें लोग अपने कंधों पर उठाये चल रहे हैं/वे सब दिगन्त जो आकाशों में असहाय लटक रहे हैं मेरा प्रत्येक क्षण जो आ और जा रहा है/स्वयं एक शिल्प-खंड बन कर/एक वक्त मेरी जाति की तरह/दूसरा वक्त मेरी गीतिका की तरह/और एक वक्त मेरी कविता की/और फिर मेरे ज्वलंत सविता की तरह।

नये चेहरों के साथ/नये कांति-मंडलों को धारण करके/मेरी कविता आती है/उछलती, कूदती, नाचती/मेरी दृग-रेखाओं पर/मेरे मार्गों पर स्वागताक्षर लिखे हुए हैं/और मार्ग-अवस्थित वृक्ष मेरे पद्चिह्नों पर रंगों की वर्षा कर रहे हैं।

कुछ बच्चे/वहाँ दूर/गोलियाँ खेल रहे हैं/वही गोलियाँ/जिनसे वे खेल रहे हैं/कल की बन्दूकों पर चढ़ कर/इस शोषण के महान् निर्माण को ध्वस्त करेंगी।

नये भवन निर्मित होंगे/और पर्वत श्रेणियों में नये सूर्योदय होंगे/क्या पर्वतों की कतारें प्रभात को रोक सकती हैं/कैसे भी सूर्य छलाँग लगा कर आने वाला है/हजार खड्गों से चीरता हुआ/वह समस्त शिखरों पर रक्त कान्ति वाले ध्वज स्थापित करेगा/ये चकाचौंध करने वाले मार्ग/जो अपनी पीठों कर लुढ़कती हुई मोटरों को ढो रहे हैं/दरख्तों की भीड़ों में से भाग जाएँगे/मैं चला जाऊँगा/और फिर नहीं लौटूँगा/किन्तु तुम मेरी स्मृतियों से बच नहीं पाओगे/वे हवा में पक्षी बन हमेशा के लिए गाती

रहेंगी/वे असंख्य किरणें बन कर मेरे लोगों पर जाल की तरह फैल जाएँगी।

मेरे बच्चो ! क्या मैं यह नहीं जानता कि तुम्हारे एक छोटे-से अश्रु-कण में कौन-सा समुद्र गरज रहा है/इसीलिए मैं/वृक्षों से चीख कर कहता हूँ/तुम अपनी शाखाओं में पत्तियों के बजाय हथियार धारण करो/

चट्टानें मेरे मार्ग में मुझसे माँगती हैं—आवाजें, आवाजें और आवाजें। अनुभवों के रथ मेरे वक्ष पर लुढ़कते हुए गुजरते हैं/यद्यपि मेरे शरीर का मांस रथचक्रों के भार से कुचला हुआ है/तो भी मैं पीछे छूटी हुई/विचारों की धुंध से भरे बादलों को निहारता खड़ा रहता हूँ/मैंने अपना सर्वस्व ऐसे छोड़ दिया है/जैसे वृक्ष फूल गिरा देता है/मैं कह नहीं सकता/कितना शक्तिवान है वह सौंदर्य/जो परित्याग से जन्मता है।

जब मैं अपने यौवन को शैशव में परिवर्तित कर सकता हूँ या शैशव को वार्धक्य में अथवा एक से किसी भी अवस्था को मैं स्वेच्छा से बुला सकता हूँ (अर्थात् मुझे प्रदत्त वयस में से किसी भी वर्ष के सार को मैं जब चाहूँ पा सकता हूँ)/तब मैं अजेय हूँ/इससे पूर्व/जीवन और मरण के तटों के मध्य डूबता हुआ/मैं एक पोत हूँ।

मेरी कामनाएँ पर्वत शिखरों के रक्त पर खड़े मन्दिर हैं/मैं तो धरती पर चलने वाला एक यात्री हूँ।

ध्यान करने को मैं तड़पता हूँ/रात्रि की निःशब्दता में लीन हो जाने के लिए/देवालय में जाने के लिए/जहाँ कोई नहीं हो/ईश्वर भी नहीं/मेरे एकान्त को भंग करने के लिए।

इस एक विशिष्ट शब्द को प्राप्त करने के लिए/तुम कल्पना नहीं कर सकते/कि कितनी गहराई तक परिश्रमपूर्वक मुझे/अपनी आत्मा की तहों को खोदना पड़ा है/रक्त चिह्नों को धरती को अर्पित करते हुए/अपने रक्तस्नात पाँवों से/मैं उड़ते हुए पक्षियों के साथ भागा हूँ।

मैं पुष्प-संन्यासियों में सम्मिलित हो कर/अरण्यों में/गहन तपस्या के रङ्गों में निमग्न हुआ/आर्कटिक क्षेत्रों में शरीर को मसलती हुई आने वाली जंगली हवाओं के/कंधे से कंधा मिलाकर मैंने कर्कश आवाजों का अभ्यास किया/और स्वयं को अनियंत्रित चक्रवातों में मिश्रित करके/हथेली पर रख कर/विशाल समुद्रों की ओर फूँक मार कर उड़ा दिया।

अन्त में पहाड़ों की गोद को देवालय बना कर मैं ईश्वर बन गया/तब सृष्टि के सारे शब्द/सिरों को प्रकाशचक्रों से मंडित करके/आकाश के नील पथों पर भीड़ बने/मुझे एक अद्‌भुत तृप्ति से देखने लगे/किन्तु अब मैं शुद्ध निःशब्दता में विलीन हूँ/मेरी स्थिति इतनी गहन है कि जिसकी तह तक कोई पहुँच नहीं सकता/मेरे लिए/अब कोई सूर्योदय नहीं/कोई सूर्यास्त नहीं/कोई रङ्ग नहीं/कोई राग नहीं/और कोई अनुभव भी नहीं/जिससे मानव इन्द्रियाँ परिचित हैं।

यही वह क्षण है/जो मुझे निचोड़ कर तुम्हें/एक अलभ्य अर्थ का/भारी उष्ण विन्दु प्रदान करता है।

किरणों के जंगल में भागते हुए/मैं बहुत जख्मी हो गया/नुकीली किरणें मेरे शरीर के मांस में धँस गयीं/वहाँ अपने सम्पूर्ण वसंत में खड़े एक अकेले वृक्ष ने/बड़ा-सा अश्रु टपकाया/उसी वृक्ष ने एक बार मेरे क्लांत शरीर पर छाया की थी/वृक्ष के अवयवों पर एक दिन फूल जरूर खिलेंगे/मेरे देश ! उन कसाई हाथों को काट दो/जो वृक्षों के शरीरों को काटते हैं/पंछी वृक्षों की भावनाएँ गाते हैं/और कवि पंछियों की भावनाएँ गाता है।

सब कोई नहीं जानते कि वसन्त क्या है ? सिर्फ वही डाली/जिसने अपनी कोयल को खोया/और वही पंछी/जिसने अपने गीतों को खोया/जानता है कि वसन्त क्या है ? वसन्त वह वसन्त नहीं है/जैसा कि लोग समझते हैं/ वह एक ऋतु है/जब समस्त पुष्प आहें भरते हैं।

पंछी तो उड़ कर जा सकते हैं/किन्तु वृक्ष कहाँ जाएगा ? जब भयानक चक्रवात उसे घेरते हैं/तब भी वह अपनी जड़ों से धरती को पकड़े हुए/दृढ़ संकल्प के साथ खड़ा रहता है/अपना जीवन धरती को समर्पित

करके/जैसे मैं अपने देश से चिपटा हुआ हूँ/हालाँकि यहाँ मेरी अपनी निजी एक अंगुल भूमि भी नहीं है।

यहाँ तक कि हवा को भी ज्ञात नहीं/कि वृक्ष से पत्ती कब झड़ती है/ भँवरे फूलों से विदा ले रहे हैं/और मेरे गाँव का नाला बल खाता हुआ/ शिथिल गति/दूर-देर की झाड़ियों में जा कर सो जाता है/मेरे पाँव ! मुझे वहीं ले चलो !

ओ प्रिय ! जब मैं उषाओं से सजी हुई तुम्हें देखता हूँ/तो मेरा समस्त अस्तित्व उद्वेलित हो जाता है/और मेरा रक्त तुमसे मिलने को लपकता है/तुम जो मेरे नये सूर्य हो।

अपने देश के महान् तानेबाने में/हम साथ-साथ/अपने प्रणय को बुनें/वे स्वप्न जो हमने एक दूसरे के लिए देखे/चारों ओर एक सुरभि बिखराते हैं/और हमारे राष्ट्र के हृदय में/कामनाओं का एक नया युग जगाते हैं।

मैं तुम पर प्राणोत्सर्ग करता हूँ/अपनी मृत्यु में/सिर्फ अमरता का उत्सव मनाने के लिए/अपने लोगों के युद्धों में।

भयंकर तूफानों के बीच भी/मैं तुम्हें कैसे बिसार सकता हूँ/मैं जो अपने देश का सैनिक हूँ/दुर्गम पर्वत मार्गों और जंगलों में चलता हुआ/ दूर-दूर अपने देश के सीमान्तों पर।

ओ मेरे प्रिय ! तुम्हारी भुजाओं की पाठशाला में मैंने प्रेम का पाठ सीखा/अपने देश और अपनी जनता को प्यार करने के लिए/और हर कदम पर तुम्हारे माध्यम से/मैं हजारों मौतों का सामना करता हूँ/ अपने देश की प्रगति की बलिपीठ तक पहुँचने के लिए/तुम्हारे वक्षस्थल की हरियाली पर मैं अपनी तप्त किरणें बिखराता हूँ/सिर्फ इसलिए कि मेरे प्रिय लोगों के जीवन को एक उज्ज्वल चित्रपट में परिवर्तित कर सकूँ/ताकि वे अपने दुःखमय जीवन में भावना और अनुभूति के रेशमी धागे बुनें/और मेरे देश की दीवारों पर एक रंगीन पिछवई हो।

उन मेघों को देखो/क्या संदेशा ला रहे हैं/वे कालजयी प्रेम का संदेश नहीं ला रहे हैं/पर नयी हवाओं के श्वास ला रहे हैं/जिन्हें तुम और मैं/अपने देश के लोगों को पान कराएँगे।

अपनी आँखें लड़ गयीं/और मेरी नींद/मेरे देश के सपनों और आकांक्षाओं की घाटियों और चरागाहों में/भटकने के लिए निकल गयी/मैं अकेला इस धरती को नहीं नाप सकता/मेरे अस्तित्व में तुम/हजारों

तरह से/एक रम्य धागे की तरह बुनी गयी हो/एक पत्नी की तरह/एक मित्र, एक प्रेमिका, एक बहन, एक माँ, एक शिशु/और हरेक वस्तु की तरह।

तुम मुझे वह शक्ति देती हो/जिससे मैं अपनी दूरियों को तय कर लेता हूँ/और हम साथ-साथ स्वयं के और अपने लोगों के गन्तव्यों तक पहुँच जाते हैं।

पाँचवाँ सर्ग

ओ राग ! मुझे सुनो······

न जाने किस सौभाग्य से/मैं नहीं जानता/आलोक का एक क्षण मेरे पास आया/आकाश में धूमकेतु की तरह। जीवन के निर्मम तथ्यों का दर्शन······

अपनी माया और सम्मोहन से मुझे मत ठगो/मुझे अपनी पीड़ाएँ विस्मृत मत करने दो/गर मैं इन्हें बिसार दूँ/तो वह जो इन हाथों से ध्वस्त होने वाला है/जीवन की दीर्घ पट्टेदारी तक/निरापद और सुरक्षित रहता चला जाएगा।······

ओ पुष्प और पक्षियो ! चुप रहो/अपने स्वरों को रोको/मुझे मेरे शस्त्र छीनने दो/जगाने दो मुझे उन मस्तिष्कों को/जो इस असहनीय दुर्गन्ध में/चैन की नींद सो रहे हैं/परिवर्तित करने दो उन्हें क्रुद्ध अंधड़ों में।

सिखाने दो मुझे उन्हें घिन करने की कला !!

प्रतिपादित करने दो मुझे उनके समक्ष/घृणा की पावनता/प्रदान कर दो मुझे/अपने शोणित की पूरी त्वरा के साथ/उन्हें/घिन जाग्रत करने का पवित्र उपहार !!

चाहे इन्हें वायु में बिखरा दो/या कागजों में आँक दो/ये शब्द/उनमें ज्वालामुखी रोपेंगे/मेरे ज्वालामुखी फूटेंगे।

इस पावन विस्फोट को रोको मत।

ये तोते/जिन्हें मैं विचारों के रेशमी धागों से बाँधने का प्रयत्न करता हूँ/छूट कर भाग जाते हैं/वृक्षों के परिवारों में जो तूफानों के निर्दयी हाथों से घायल हैं।

जीवन यहाँ/अविकसित अवयवों और बदसूरत आकारों वाले स्वप्नों का/ गर्भपात करता है/जिसे कोई गिद्ध अपनी चोंच में उठा कर/पहाड़ी पर ले जाता है/चबाता है/और फिर उसे लोगों पर वमन करता है/ कविता के नाम पर।

जो बच्चा गर्भ में है/हमारे इस देश में/वह वहीं रहे तो अच्छा है/ अगर वह बाहर निकल कर भूख से बिलबिलाता है/तो लोग उसे फुट-पाथ की ओर भेजेंगे,खेतों की ओर नहीं।

यहाँ सूरज भी गिरता है हर रात गर्भ से/एक बिना आकार वाले मांस के लोथड़े की तरह ।

मेरे दिन यहाँ कोढ़ियों की बस्तियों की तरह/लँगड़ाते हैं/ मेरे भविष्य के स्वप्न,सर्प की तरह फुंकारते हैं/और डसते हैं/मेरी वर्तमान रातों की मज्जा को।

मेरे देश के दिन नाव हैं/जो चट्टानों से टकरा कर टूट जाते हैं। रातें पीड़ाएँ हैं/जो हृदय को छूती हैं और ज्वालाओं में विस्फोटित हो जाती हैं। मैं एक क्रूद्ध मगरमच्छ हूँ अपने देश के शरीर से निकलने वाले गंदे मवाद से निर्मित ।

मेरे मस्तिष्क की झाड़ियों में/एक लाल लोमड़ी घूमती है/घनी झाड़ियों के बीच/लुकती-छिपती/सदैव किसी भी चीज को लपकने को तत्पर/ अँधेरे में उसकी आँखें/अङ्गारों की तरह धधकती हैं/अनजाने लक्ष्य के लिए/यह मेरे विचारों को बीच में रोकती है/विस्मयबोधक/कामा/कोलन/ हाइफन में/किन्तु कभी पूर्णविराम से परिचित नहीं कराती/वह चारों ओर से नये-नये विचार लाती है/और मेरे विचारों के जुलूस को/बड़ा करके आगे बढ़ाती है/और उन्हें बड़ी तीव्र भावनाओं के शस्त्रों से सज्जित करती है/फिर प्रतीक्षा करती है/कि यह जुलूस घाटियों में विस्फोटित हो/बेलगाम, हिंसक और गरजते हुए समुद्र की तरह।

यह लाल लोमड़ी/जो मेरे मस्तिष्क को ज्वालाएँ खिलाती है/चलती है/एक हिलती हुई लाल चिंदी की तरह/पतले, रोमीले पाँवों से आगे बढ़ती है/उन उमड़ते हुए तूफानों के विपरीत/जो देशों/महाद्वीपों और राष्ट्रों के शत्रु हैं/इस लाल लोमड़ी को किसने बनाया ? क्या उन दो

लाल अङ्गारों ने जो उन घने जंगलों में धधकते थे/एक सिर/एक दाढ़ी और मूँछों के बीच/नहीं/मुझे विश्वास है/यह डाल्टन आफ इग्लैंड ने नहीं बनाया।

कहीं से एक पक्षी आ कर/अपने पंखों पर/मेरे कानों में एक गीत टपकाता है/और उड़ जाता है/एक पंक्ति जो तुम तक/एक वास्तविक अनुभूति को पहुँचाती है/एक जीवन और गीत के पंछी के समान आती है।

हाँ, यही वह धरती है/जहाँ लाखों पत्थर अपनी पहाड़ियों के/परिवार से बिछुड़ कर जीते हैं/हाँ, यही वह भूमि है/जिसे छीलते हुए/सूर्य की लौह-एड़ियों के नीचे कुचल दिया गया है/हाँ, यही वह देश है/जो मृग-तृष्ण चिता की लपटों को उगलता है/अपने रक्तिम घावों से।

यह नृत्यशाला है/क्रूद्ध सूर्य की बेतरतीब लपटों की/यही वह धरती है/जिसे हर प्राणी उजाड़ कर चला गया है/एक भयानक शून्य के हाथों में छोड़ कर/जो आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैला है।

यहाँ कोई चीज जीवित नहीं है/एक वृक्ष और एक पक्षी के अतिरिक्त/शायद यह वही वृक्ष है/जिसका रास्ता खो गया है/उन वृक्ष-परिवारों/से जो पानी की खोज में दूसरे देशों को/स्थानांतरित हो गये हैं।

वृक्ष का एक आँसू/अपने हल का/एक मात्र हलवाहा है/वह अकेला इस काली, चट्टानी भूमि से जीवन का सार निकालता है।

वह अहंकारी सूर्य/अपनी मांस-पेशियों को वृक्ष के गालों पर रगड़ता है/ये निर्वासित आँधियाँ इन वृक्षों के नीचे शरण लेने किन देशों से आती हैं/कौन कहता है कि वे चट्टानें हैं/ये वो चेतनाएँ हैं/जिन्होंने स्वयं अपने हाथों से अपने मुँह बन्द कर लिये।

कौन कहता है कि वे सूर्य की ज्वालाएँ हैं ? वे तो आग की सेनाएँ हैं/जो असहाय चट्टानों पर आक्रमण कर रही हैं/इतिहास में मेरे साथ चट्टानों ने भी रक्त दिया/आज वे केवल चट्टानें हैं/किन्तु विगत साम्राज्यों के शिल्प उनके स्वप्न थे।

ओ कृषक ! अपने हल के साथ तुम एकाकी नहीं हो/तुम्हारी यात्रा/केवल एक आँसू की बूँद की तरह/ठहर नहीं सकती/याद रखो ! तुम्हारा एक और भाई है/दूसरे देशों में/जो पत्थरों पर पड़ते तुम्हारे पाँवों के संग/कदम से कदम मिला कर चल रहा है/ईराक में/ईरान में/मैक्सिको में/सुदूर पूर्व और मंगोलिया में।

इस खुरदुरी धरती पर/जहाँ चट्टानों के अश्रु प्रवाहित हैं/एक ऐसे मनुष्य का उदय होगा/जिसके शरीर पर लौह मांसपेशियाँ/चक्रवातों की तरह हिलेंगी।

दूर पहाड़ों की शृङ्खलाओं को देखो ! कितनी शान्ति के साथ वे चल रहे हैं/अपने कंधों को सूर्य के उपरणों से ढांके हुए/वे अवतार हैं/जो आकाश की गहराइयों पर दृश्य-वाचन कर रहे हैं/उच्चस्वर में/जिसे सब नहीं समझ सकते।

ओ मेरे एक मात्र प्रिय ! अब मैं अकेला हूँ/और इस घोर शून्यता में/अपनी शून्यताओं को बटोर रहा हूँ/मैं दूरियों को अपने कंधों पर लादे हुए चल रहा हूँ/अपने पैरों को/उन फासलों तक घसीटता हुआ/मेरे हाथ निष्क्रियता के भार से गिर रहे हैं।

चलो/गीतों की झड़ी बन कर छलांग लगाएँ/इस धरती पर/अपने देश के स्वप्नों को/पुष्प-नौकाओं की तरह/उनके गन्तव्यों तक पहुँचा दें।

अतीव प्रणय के क्षणों में—जबकि हमारे दिल/देश के प्रति महान् भावनाओं से स्पंदित हैं/हम दोनों/अश्रु का एक कण बन कर/मानवता के चरणों में समर्पित हो जाएँ।

प्रिय ! मेरी आँखों और कानों को ढाँक दो/अपनी मृदुलता में उन्हें लपेट दो/इस धरती पर/जहाँ पुष्प प्रस्फुटित होते हैं/रक्त की बूंदें टपक रही हैं/इस धरती पर जहाँ पक्षियों का कलरव मुखरित है/वहीं हवा/उसाँसे भर रही है/दिनों को वृक्षों से बाँध कर फाँसी दी जा रही है/उदय होते हुए सूर्य को झटक कर/पश्चिम के पत्थरों पर फेंक दिया जा रहा है/हर प्रभात रक्त वमन कर रहा है/और मेरे जन बँधे हाथों बैठे हुए हैं/क्रोधित होकर पर्वत चीखते क्यों नहीं ? ये असंख्य नक्षत्र अपने-आप को कुचल कर/मर कर/गिर क्यों नहीं जाते ?

मेरे देश में आवाज निर्वासित हो गयी/मैं जो आवाज यहाँ उठाता हूँ/वह लौटती नहीं/आकाश में जा कर कहीं लटक जाती है।

लोग मुझे क्यों नहीं सुनते ? वे जागना नहीं जानते/वे जम्हाई तक लेना नहीं जानते/वे अपने सुदीर्घ बाहुओं को पसार कर/भूमि पर अपने पाँव पटकना भी नहीं जानते।

प्रिय ! ये हमारे अपने लोग हैं/हमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति उन्हें देनी चाहिए/हम एक दूसरे से इतना प्यार करें/कि अपने अस्तित्व का पूरा सार निचोड़ कर उन्हें दे दें/जो हमारी धरती के रचयिता और हमारे इतिहास के निर्माता हैं/जो हमारे स्वप्नों और इच्छाओं को पूरित करते हैं।

छठा सर्ग

तुमने मुझे पुकारा/किन्तु जैसे-तैसे तुम्हारी आवाजों को खोजता हुआ/मैं तुम्हारे आवाहन से पूर्व ही आ गया हूँ/अपने कानों, आँखों, त्वचा और श्वास से ढूँढ़ता हुआ।

एकाकी नहीं/अपनी समस्त चेतना के साथ/अपने देश की सभी दिशाओं में ढूँढ़ता हुआ/मैं इसलिए आया कि हम एक दूसरे के हाथ में हाथ डाले/एक साथ/एक ही दिशा की ओर अग्रसर हों/यह नहीं कि सिर्फ मुझे ही ज्ञात है/तुम्हें नहीं/यह भी नहीं कि हम सब एक ही भाषा बोलें/किन्तु हमारे शब्द सामान्य न हों। वे प्रकाश की एक लपट हों/ और हमारे लोगों के पथों को ज्योतित करें। और हम इस लपट को अपने भीतर भी अनुभव करें/इसी लिए मुझे तुम्हारी तलाश है।

ऐ मित्र ! मेरे शब्द और विचार ऐसे देश हैं/जो किसी भी मानव के पाँवों के स्पर्श से अछूते हैं/मेरी चेतनता एक ऐसा बनजारा है जो पुराकालीन मानव-इतिहास की किसी भी सीमा से परिचित नहीं है/ मेरे चरण ऐसे बलशाली हिंसक सिंह हैं/जो घने, बीहड़ जंगलों में भय-रहित विचरते हैं। मैं फूलों से, उद्यानों से, मेघों और भयंकर तूफान से लड़ता हूँ।

युद्ध मेरे जीवित रहने के लिए एक श्वास है/और मेरे अवयव किसी भी प्रकार की आज्ञाकारी भंगिमा नहीं जानते/मैं न्यायसंगत रोष का सैनिक हूँ/सत्य एक ज्वालामुखी है/जिसका विस्फोट मेरे वक्षस्थल में प्रतिक्षण होता है/सत्य एक ऐसा प्रचंड प्रपात है जो मेरी आवाज में गरजता रहता है/अपने स्वार्थपरायण शरीर को जलाकर/मैं अपने देश के राजपथों पर/द्रवित स्वर्ण की नदी की तरह बह रहा हूँ/मेरे संग बहो !

भय कैसा ? अपने लिए भयभीत क्यों हो ? अपने राष्ट्र के लिए

चिंतित होओ/तुम्हें यह जानना चाहिए कि इन तुच्छ, नगण्य व्यक्तियों की तुलना में/देश की कितनी महान् हानियाँ हो रही हैं।

इस विराट् विनाश-लीला के बीच तुम कैसे खा और सो सकते हो !

मेरे बन्धु ! मेरे देश के आँसू पोंछने के लिए/मुझे रक्ताभ उष्ण चेतना से लबालब भरी/ऐसी नयी आवाजों की जरूरत है/जिनसे मैं स्वयं अपने शस्त्र और शस्त्रागार निर्मित करूँ।

शायद तुम्हें ज्ञात नहीं/किन्तु मुझे पता है कि तुम्हारी आवाजों में गंधक की खदानें हैं/कि तुम्हारी प्रत्येक कविता युद्ध के लिए एक बन्दूक है/और प्रत्येक पंक्ति/शत्रु पर चोट करने के लिए एक तोप।

मैं देता हूँ वाणी का दान अपने लोगों को/मेरी भाषा श्वास लेती है मेरे देश की प्राण वायु में/मेरी धरती/मेरे शिल्प का जीवन है/मैं रक्त-प्रवक्ता हूँ।

मेरे देश में नेतृत्व हो किन्तु मेरा/मैं इसे राजनीतिज्ञों के हाथों में नहीं सौंप सकता।—

आओ ! अपने हथियार सँभालो—अपनी कविताएँ—सेनाओं की तरह आओ ! तूफानों की तरह आओ ! अपने वज्राघात के साथ/जिन्हें तुमने एक अवसर के लिए बादलों में छिपा रखा था।

मैं एक भयंकर आँधी हूँ/मैं तुम्हें उत्तेजना बाँटने आयी हूँ/मैं चीख रही हूँ/धरती से उत्पीड़न को भगाने के लिए।

आओ मेरे लोगो ! मेरे संग चलो ! मेरे साथ चलने के लिए तुम्हें/उस स्वार्थ को निर्दयतापूर्वक त्याग कर/जिसमें तुम लिप्त हो/मुक्त हो जाना चाहिए/तुम्हारी आवाज तुम्हारे अपने गीत को निर्वासित कर/और जनता के गीत को जन्म दे/जैसे आकाश की आवाज बिजली को फेंकती है/तुम अपनी युद्धाग्नि को देश की अग्नि से मिला दो/तुम्हारी मुट्ठी भर जिन्दगी के लिए आखिर कितना प्यार चाहिए ! इस भूमिका का उत्तराधिकार अन्त में पीड़ित मानवता को ही मिलेगा।

आओ ! जो इस भूमि में दफन है/अपनी उस उषा का उत्खनन करें।

मेरे लोगो ! चलो, अपने-अपने हल उठा लो/आओ/अपनी घर-वालियों और बच्चों के संग/निकलो अपने घरों से/जेल जैसे विद्यालयों

से/कार्यालयों से/विधानसभाओं से/अकादमियों से/बाहर आओ/और देखो कि समय की हवाओं में सदियाँ उड़ी जा रही हैं।

आओ/मेरे सँग-सँग गाँवों-कस्बों और नगरों से होते हुए चलो/बाढ़ों की तरह बहो/और गरजो राष्ट्र के गली-कूचों और राजमार्गों पर।

देखो! खेतों में/अरण्यों में/पहाड़ों में/अपनी हर दीवार और कमरों में/उन कब्रों को/जहाँ हमारी उषा दफन है।

आओ! अपने हल को उठा लो भाई/मेरे बच्चो! अपनी पुस्तकें फेंक दो/आओ/हम उनकी प्राण-वायु का पान करें/जिन्होंने हमारे प्रभात को दफनाया/और हमें अपने ही देश में गुलाम बनाया।

चलो/खोजेंगे इस धरती में/उन अनगिनत श्रमिकों के पदचिह्नों को/जिन्होंने मानवता के क्षेत्रों में/सुख के भवन निर्मित करते हुए/कष्टों को माला की तरह आलिंगित किया।

हल चलाएँ और धरती को चीरें/उन असंख्य मूक आवाजों को बीनें जो हमारे हल के फाल से टकराती हैं।

इस रक्तिम आकांक्षा को/एक ध्वज की तरह खोलें और लहराएँ/इस यात्रा में हम आविष्कार करेंगे/मनुष्य का/मृत्यु/नहीं/और जीवन कभी मरता नहीं/आओ मित्र/यात्रा बहुत लम्बी है/दूर जाना है/अपनी स्वार्थी दीवारों को छलाँगते हुए चलो!

जन-जन की ऐतिहासिक लहरों में स्नान करेंगे/धुल कर नयी दुनियाँ के तटों तक चलें,आओ, चलें!

क्या तुम जानते हो वहाँ भूख है? क्या तुम जानते हो कि वहाँ प्यास है? और ये कि दो अत्यन्त निर्दय पशु/तुम्हारी अनमोल स्वतंत्रता के मांस पर पनप रहे हैं?

सुनो! सम्पूर्ण राष्ट्र की वाणी बन कर/मैं तुम्हारे पास आया हूँ/तुम्हें यह बताने कि यदि तुम अपनो पीढ़ी के साथ/इनके शिकंजे से मुक्ति चाहते हो तो—अपने पिता द्वारा प्रदत्त गुड़ियाओं और सचित्र पुस्तकों

को/नकारकर/उससे कहो कि तुम्हें खेत और कारखाने दे—उसे बता दो कि यही वे खिलौने हैं/जिन्हें तुम पसन्द करते हो।

गर तुम्हारा पिता/उन्हें तुम्हारे लिए उपलब्ध नहीं करा सकता/तो देश के समस्त पिताओं को एकत्र करो/मेरे बच्चो! क्या तुम जानते हो कि जब तुम महाविद्यालयों में जाते हो तो खेत तुम्हारी ओर/अश्रुपूरित नेत्रों से देखते रहते हैं/वे पूछते हैं : 'देश के मार्गों पर सदैव पुस्तकों का यह प्रदर्शन किसलिए है ? अन्ततः इस देश का इन पुस्तकों ने क्या भला किया है ?''

तुम महाविद्यालयों की चार दीवारों में जाते हो/वहाँ से सरकारी दीवारों में/और आखिरकार ऐसी दीवारों के घेरे में चले जाते हो/जहाँ से कभी कोई लौटा नहीं/मैं जानना चाहता हूँ/कि फिर तुमने जीवन कब जिया ? तुम्हारी पितृपीढ़ी ने यही किया और अपनी संतानों के लिए बपौती के रूप में यह प्रश्न छोड़ दिया।

जब अपनी सलेटें और पुस्तकें लिए हुए तुम चलते हो तो/मुझे ऐसा अनुभव होता है कि बालक ईसामसीह की तरह/प्रत्येक बच्चा अपना सलीब खुद उठाये चल रहा है।

उठो मेरे बच्चो! अपने बचपन से ऊपर उठो/अपनी पुस्तकों को फेंको/और अपने हल उठाओ/पुराने बन्धनों को तोड़ कर खेतों की पुकार की ओर अग्रसर हो।

पुराने पथों को अन्तिम नमस्कार करो!

सुनो! मैं तुम्हें अपनी अग्नि की एक भयंकर भेंट प्रदान कर रहा हूँ/जिसे मैंने अपने हृदय में एक सूम के धन की तरह छिपा रखा था/इस पुराने कचरे को जला दो और अपनी एक नयी दुनिया निर्मित करो/पुरातन हवाओं की तरह गर्जना करो और घोषित करो कि/तुम सिर्फ खाने, श्वास लेने और हमेशा के लिए छोड़ कर चले जाने के लिए नहीं आये हो/कि तुम वह विशाल ज्वाला हो/जो अरण्यों को छोड़कर आये हो/कि तुम वह बलवान सागर हो/जो अपने तट-बंध तोड़ कर आया है।

यह क्षण इतिहास में मेरे शिखरों पर चढ़ कर पुकारता है/मेरी यात्रा एक स्वेद बिन्दु बन कर/मेरे ललाट पर तन जाती है/अब मैं यह

सत्य तम्हें अपने रक्त से हस्ताक्षरित उत्तराधिकार में दे रहा हूँ ।—

स्वतंत्रता मनुष्य की प्रथम श्वास है/वही तुम्हारे रक्त की जीवंत भाषा है/इस धरती से अपना अन्तिम चरण उठाने तक/उसे अपने पास रोक रखना/तुम्हारी एक मात्र इच्छा होनी चाहिए ।

खेत ही तुम्हारी पाठशालाएँ हैं/वन, नदियाँ, मेघ, सूर्योदय और सूर्यास्त/तुम्हारे शिक्षक हैं/अपने सम्पूर्ण हृदय से/स्वयं को/उनकी भाषा को समर्पित कर दो/उनके अनुशासन को स्वीकार कर लो ।

खेत तुम्हें स्वतंत्रता की भेंट प्रदान करते हैं/वे तुम्हें निश्चिन्तता में श्वास लेने का आनन्द अर्पित करते हैं/वे तुम्हें दक्षिण के पठार जैसी छाती देते हैं/और सख्त लौह चरण/वे तुम्हें स्वाभिमान के स्फुलिंग उगलते नेत्र देते हैं/वे तुम्हें पर्वत की चोटी-सा उन्नत मस्तक देते हैं/आओ ! और अपने नये शिक्षकों के चरणों में स्वयं को प्रणिपात करो ।

साहसपूर्वक आगे बढ़ो ! यह देश तुम्हारा है ।

यदि तुम उसमें पीड़ा नहीं भर सकते/तो तुम्हें हृदय की क्या आवश्यकता है ? यदि तुम उन्हें आँसुओं से आर्द्र नहीं कर सकते/तो तुम्हें आँखों की जरूरत नहीं ।

तुम्हें ज्ञात है कि मैं प्रति दिन हजार बार रोता हूँ/तुमसे एकाकार हो कर/मैं मुक्ति को पा जाता हूँ/तुम मेरे सागर हो/जिससे मिलने के लिए मैं/बादलों से/पहाड़ियों से/अरण्यों से/मेरे देश की सभी दिशाओं से/भागा आ रहा हूँ/मेरे मार्ग में रोड़ा मत बनो/मेरे साथ नीच चाल मत चलो/और मुझे/अपने इस्तेमाल की वस्तु मत बनाओ/मेरी दुर्दान्त प्रवाह-शक्ति को देखो/तुम्हारी आँखें आनन्दमग्न हो जाएँगी ।

मेरी आवाज की गर्जना में उस क्रोध को सुनो/तुम्हारे कान/माधुर्य से भर जाएँगे/मेरी यात्रा का इतिहास पढ़ो/आओ, तुम्हारे हृदयों को मैं अपने शब्दों की लपटों पर सेकूँगा/तुम्हें तुम्हारा गन्तव्य दिखाऊँगा/समाज को मैं ऐसे चीरता हूँ/जैसे वज्राघात से वृक्ष चिर जाता है ।

मैं विश्व की समस्त हवाओं को पी जाता हूँ/मैं अपने सारे कागजों को जला दूँगा/मैं अपने समस्त पर्वतों को फोड़ दूँगा/मैं अपने शरीर के सम्पूर्ण घर को पवित्र रक्त से लीप दूँगा/और जंगली आवाजों के दीयों

से/मैं अपने समस्त वातायनों को प्रज्वलित करूँगा।

मैं अपनी नस-नस से कान्ति निचोड़ कर/दान कर दूँगा/अपने रक्त की अन्तिम बूँद तक बहा दूँगा/मेरी सम्पूर्ण शक्ति धान्य और फल में परिवर्तित हो जाएगी/और देश का हर खेत मेरी फसल से भर जाएगा/ और फिर/मेरी आत्मा तृप्ति की धूप में प्रस्फुटित होगी/कि मैं/अपने देश को जाग्रति का एक क्षण दे सका।

क्या तुम जानते हो कि धान्य कहाँ से आता है? क्या यह भी जानते हो कि इस धरती को कौन जोतता है? क्या तुम यह भी जानते हो कि इस प्राणदान के साधन/हल को/कौन निर्मित करता है? क्या तुम्हें यह ज्ञात है कि धरती में कितनी शक्ति है? मित्रो? पृथ्वी की सृजन-शक्ति को जानो-पहचानो।

लपटों में लोहा तप्त-लाल है/और दुपहरी में मनुष्य का मन झुलस रहा है/और उस ठोस लौह पर/जो उगते हुए सूर्य की तरह जलता है/ हथौड़े की भारी चोटें पड़ रही हैं/लौह-बाहु वीर तूफानों को फूँक से उड़ा रहे हैं/कारखानों में पुरानी दुनिया को भस्म करके/नयी दुनिया का निर्माण कर रहे हैं।

वे अतीत के बेज़ुबान अनगिनत श्रमिक/जीवन-व्यापार में संलग्न/ धरती में अन्तर्धान हो गये/मेरे रणबाकुरो! उस आवाज का/जो धरती में समाहित हो गयी थी/फिर से आह्वान करो/मेरे बहादुरो! गर्जन करो कि उसकी रोटी उसी को लौटा दो।

बन्धु! यह शरीर जो स्वेद का परिमल उगल रहा है/उसमें से खोद कर मानवीय ज्वाला को निकालो। बैलों के नेत्रों में सिगड़ियाँ सुलग रही हैं/और/हलके ललाट पर क्रोधाग्नि प्रज्वलित है।

ओ सूर्य! जलो, खूब जलो/हमारे सारे अन्धकार के विनष्ट होने तक।

मैं इस देश को जोतने वाला किसान हूँ/मेरा मस्तिष्क सदैव यह सोचता

है/कि इस धरती के धान्य में पाँव लग जाएँ/और उन पाँवों के स्वप्न हों कि वे/भूखे लोगों के घरों तक पहुँच जाएँ/मैं दिन भर हल जोतता हूँ/ और फिर दूर बैठ कर उस भूमि की विशालता को देखता हूँ/जिसे मैंने जोता है/हवाओं को निःश्वास खिलाता हुआ/और संध्या को देखता हुआ/ जो एक झुके हुए उस बूढ़े श्रमिक की तरह है/जो अपनी पीठ पर स्वर्ण के शोले लादे हुए चल रहा है।

मैं धरती में लीन हो गया हूँ/वृक्ष और धान्य के समान/जो इस धरती में समाहित हैं/मैं उगता हूँ और धान्य और फल की तरह इस देश में जीता हूँ।

सुबह से शाम तक मेरे हाथ श्रम से परिपूर्ण हैं/किन्तु दूसरी सुबह तक वे फिर रिक्त हो जाते हैं/काम के लिए/जब कि मेरा मित्र सूर्य दिन भर कार्यलीन रहता है आकाश में/आकाश को प्रकाश से भरने के लिए और दूसरे दिन आकाश फिर रिक्त हो जाता है/पुनः भरे जाने के लिए।

स्नेहपूर्वक मैं धरती को मनाता हूँ/अपने प्रवीण हाथों से उसे मक्खन की तरह नरम और स्वादिष्ट बना कर/बाल्य फसलों को प्रेम से खिलाता हुआ पोसता हूँ।

मेरा शरीर पृथ्वी है/जब ग्रीष्म में सूर्य क्रोधित होता है तो/हम दोनों जलते हैं और पानी के लिए तृषित होते हैं।

जब एक मांसल वर्षा-बिन्दु मेरे मस्तिष्क की सूखी रेत में उतरता है/तब वह अनगिनत सुगन्धित स्वप्नों को जगाता है।

मैं एक भग्न स्वप्न से उपजा हूँ/मैं एक टूटे इंद्रधनु के टपकते हुए रंगों में स्नान कर रहा हूँ।

मेरे पक्षी हवाओं से तैरते हैं/शाखा-प्रशाखाओं में घर बनाते हैं/और आकाश में रास्ते निर्मित करते हैं।

अपने स्वप्नों के देश में मेरी अपनी सिर्फ एक झोपड़ी है/मैं नहीं जानता कि एक शून्य में क्यों जिऊँ ?

हर कोई फसल काटने को जा रहा है /उनके संग/सम्मिलित होने को/मेरे मन में इच्छाओं के मोती उमग रहे हैं/किन्तु मेरी दराँती टूट गयी है/और मेरे प्रिय देश में ऐसा कोई नहीं है/जो इसकी मरम्मत कर दे।

मैं चल रहा हूँ/मैं चल रहा हूँ अंधकार-भरी झोपड़ियों से गुजरता हुआ/वे झोपड़ियाँ जिन्हें एक बाती का सौभाग्य भी नही मिला/मेरे पाँव काट दिये गये हैं/फिर भी/मैं चलता रहा/दूरियों को नापता हुआ/मेरी भुजाएँ काट दी गयीं/किन्तु मैं चलता रहा/अपने स्वप्नों को तराशता हुआ मेरी जीभ भी काट दी गयी/तो भी मैं चलता रहा/अपनी निःशब्दता को थामे हुए/मैं बढ़ता रहा बाढ़ की तरह/समुद्र में/मैं गर्जता रहा/पागल आँधियों की तरह/आकाश में।······

उस क्रूर अंधकार में एक दीप भी नहीं था/जो मुझे/मुट्ठी भर किरणों के टुकड़ों की भीख दे सके।

मैं चल रहा हूँ/मैं चल रहा हूँ/झोपड़ियों की कतार में/जहाँ दिन में कोई पुरुष नहीं होता और रात में/कोई दीया नहीं जलता।

यहाँ/एक ऐसा बालक/बछड़े को चराने ले जा रहा है/जबकि उसका खुद का पेट खाली है/मजूरी करनी पड़ती है जहाँ बाल्यावस्था को भी/जीवित रहने के लिए/वहाँ मेरे पाँव सचमुच कट गये/मेरे हाथ वास्तव में गिर गये/और मेरी जीभ झड़ गयी/वहाँ मैं बाढ़ नहीं हूँ/वहाँ मैं पागल आँधी भी नहीं हूँ/इस बालक के पाँवों के सामने।

मैंने अपने घड़े भर अश्रु उन पाँवों पर डाल दिये/मेरे आत्मा में झूलती हुई मोतियों की माला टूटी और उन कदमों में गिर पड़ी।

मेरी कविता अपना मुँह फिरा कर रोने लगी/और कहा—"यदि स्वर्गिक स्वप्न दिखा कर भी तुम मुझे बुलाओगे तो भी मैं यहाँ से नहीं आ सकती/यहाँ मैं सदैव के लिए अंकित हो गयी हूँ।"

जब किसी ने पुकारा—उषा! उषा!!—तो गाँव के तमाम लोग/देखने के लिए घरों से बाहर आ गये/बच्चे भागते हुए रास्तों पर आ जुड़े/घरों के दरवाजे, खिड़कियों के पल्ले, मधुशाला के द्वार और कारखानों के फाटक और तमाम गाँव के दरवाजे/बड़ी उत्सुकता से खुले/किन्तु उन्होंने पाया कि सूर्य के बजाय वहाँ सूर्य-ग्रहण था/उसने इस देश के स्त्री-पुरुष-बालक मात्र को ही धोखा नहीं दिया/बल्कि नदी, पर्वत अरण्य और खेतों को भी।

यहाँ अब कोई आशा नहीं है/जीवन यहां एक सड़े हुए फल की तरह

शिथिल है। इस विष-वृक्ष की कलम कहीं भी लगाने से/स्वादिष्ट फल नहीं देगी/इसलिए इसे निर्मूल करना ही हमारा एक मात्र कर्त्तव्य है।

तुम पानी के घाव/वृक्षों के घाव/और फसलों के घाव नहीं देख सकते/पर शायद तुम्हें ज्ञात नहीं है कि/अरण्य, नदियाँ और खेत उन महान् मृतवीरों की आत्माएँ हैं/जिनके नाम इतिहास के पृष्ठों पर अंकित नहीं हैं।

जिन लोगों ने सारे देश को जीत कर/अपनी देह की मांस-मज्जा मिट्टी को अर्पित की/जो धरती का क्रंदन सुनकर/उसे प्यार से थपकता है/जो श्रम के लहू और स्वेद से/पृथ्वी को मक्खन की तरह मृदु बनाता है/जो दिन-रात इन किशोर लहराती फसलों को/ममतालु नेत्रों से निहारता है/उनके शरीर के हर कोमल परिमल और परिवर्तन को देखता है/और जब धान्य फूटने लगता है/जो उनके स्वप्न का फल है/जो उनके स्वेद और रक्त की संतति है/तब वह खाली हाथ/वहाँ से निष्क्रमित हो जाता है।

कृषक/जो मानव-इतिहास के महान् योद्धा हैं/वे अनाम, असंख्य मृतवीर/भूमि के अन्दर जीवित हैं/वे इसे छोड़कर जाना नहीं चाहते/वे धरती की पुरातन गंध को/स्नेह पूर्वक आलिंगित करते हुए/इसी में समाहित रहते हैं।

जब बीज बोया जाता है/और वर्षा की प्रथम बूँदें धरती में उतरती हैं/तो वे बीज के गर्भों में प्रविष्ट हो जाती हैं/फिर फल बनती हैं/धान्य बनती हैं/और फिर मनुष्यों में प्रविष्ट हो भावी पीढ़ी के लिए बीज बन जाती हैं।

इस देश के वृक्ष अश्रु बहाते हैं/और खेत रोते हैं/जब वे देखते हैं कि उनके बच्चों को/पाठशालाओं की ओर घसीटा जा रहा है।

ऐसा नहीं कि विरोध प्रदर्शित नहीं कर सकते/अगर वे मुँह खोलें तो देश, देशान्तर, महाद्वीप और महासमुद्र काँप उठेंगे।

अगर एक वृक्ष शिखर पर चढ़ कर/अपनी तेज आवाज में ललकारे/तो देश के सभी वृक्ष/चारों दिशाओं से भागते हुए आएँगे/भीड़ों में/संख्यातीत/······

वहाँ जंगलों की एक महासभा होगी/कदम उठाने के लिए तत्पर/मिल कर निर्णय करने के लिए/कि अब वे उन घरों, विश्वविद्यालयों,

कार्यालयों में किसी प्रकार की सेवा नहीं करेंगे/जो इस देश के बच्चों को छीन कर ले जा रहे हैं/और उन्हें गुलामों में बदल रहे हैं।

प्रतिरोधस्वरूप/दरवाज़े, खिड़कियाँ, नाटें, बेंच, टेबल-कुर्सियाँ और तमाम लकड़ी/जो इन घरों के निर्माण में प्रयुक्त की गयी है/फिर से वृक्ष बन जाएगी/और विरोधस्वरूप फिर से जंगलों की ओर चली जाएँगी।

जल नदियों की ओर लौट जाएगा/और वायु आकाश की ओर/गुलामी के कारखाने ढह जाएँगे।

उत्पादन की प्रक्रिया ठप हो जाएगी/व्यापार के अगुवा अपनी जान बचा कर भाग जाएँगे/और इस देश का बच्चा-बच्चा गुलामी की कारा से छूटेगा।

मेघ फिर वर्षा करेंगे/नदियाँ फिर प्रवहमान होंगी/अरण्य अपने विशाल बाहुओं को आकाश की ओर उठाएँगे/और असंख्य बच्चे खेतों में फूलों की तरह/नाचेंगे, गाएँगे और देश फिर से जीवन की साँस लेगा।

जब मैं किसी के चेहरे पर/एक लम्बी मुसकान खिंची पाता हूँ/मेरे हाथ स्वत: हथगोले की ओर बढ़ जाते हैं। यह मुसकान वह कैसे पा सका? किसको रिश्वत दे कर इसे खरीदा!

मेरे आन्तरिक जंगलों में/आँखों में ज्वलंत प्रश्न किया/हजारों भूखे भेड़िये भागते आते हैं/अफसोस है कि इस देश में/एक ईमानदार और सरल व्यक्ति/मुसकुराहट रख पाने में अक्षम है।

सुन्दर वस्तुओं को देख कर मेरी घृणा उबल पड़ती है/कितनी अर्थ-हीन है सुन्दरता/मेरे जीवन में/आनन्द सौन्दर्य का एक दूसरा रूपान्तरण है/इसलिए ये दोनों भी मेरे शत्रु हैं।

मुझे आनन्द और सौन्दर्य से क्या लेना-देना है? जबकि तुम्हारे अधिकारियों ने मेरे पिता के चेहरे पर थूका/उस समय मैं एक अबोध बालक था/उस समय मैं अग्नि-वर्षा नहीं कर सका/केवल मेरी आँखों से अश्रु बहे/अब मेरी आँखों से लाल रक्त टपकता है।

मुझे सौंदर्य से क्या वास्ता है? जब तुम्हारे अधिकारी मुझे अयोग्य कहते हैं/मैं/जो एक ज्वालामुखी से कम शक्तिवान नहीं। वे मानवीय

आत्म-गौरव और आत्म-सम्मान के जन्माधिकार से खेलते हैं/हरामजादे/ इन्होंने हमारे अमूल्य जीवन को खिलौना समझ लिया है।

मेरा तापमान देख कर सभ्य भाषा भयातुर हो/मेरे ओठों से बहुत पहले भाग गयी/अब यह सिर्फ गाली नहीं है/मेरा सम्पूर्ण शरीर रक्त और अग्नि के तूफान उड़ा रहा है।

मेरा हाथ उठता है/उस विशाल भवन को अपने एक मुष्टाघात से/ खंड-खंड करने के लिए/जब मैं उन चेहरों को देखता हूँ तो मेरे फूलों के सम्पूर्ण संसार की आकांक्षाएँ/भस्मीभूत हो जाती हैं/तुम्हारे चेहरों की क्रूरता से मैं अपने-आप को कैसे बचा सकता हूँ/पारस्परिक सहयोग से/ जिस दानवीय भवन को तुमने निर्मित किया है/वह कब ध्वस्त होगा ?

ओ हिंस्र असभ्य जाति ! तुम सौंदर्य का संचालन कर रहे हो/जबकि जन्म से तुम्हारा ध्येय उसे विनष्ट करना है।

वसन्त के नाम पर हर वर्ष/क्रोध से विदग्ध वृक्ष/ज्वालाओं/की हड़-ताल मनाते हैं/अपने शरीरों पर पुष्पों की अग्नि लेपे हुए/और उनके भाल पर/पक्षियों की कतारें/विरोध-हस्ताक्षरों की तरह बैठी हुई हैं।

इस तरह देख कर तुम मुझे क्या समझोगे ? जीवित रहते हुए/मैं एक सामान्य आदमी हूँ/किन्तु मरणोपरान्त/मैं अमर हूँ।

तपस्या कर-करके आदमी ने एक सर्प को जन्म दिया/उसे पालपोस कर बड़ा किया/और उदारतापूर्वक उसे वोटों का धान्य खिलाया/और यह आशा की/कि वह सदैव उसके फन की शीतल छाया में/सुख और शान्ति से जीवनयापन कर सकेगा/अब यह सर्प नियमित रूप से कानून के अंडे देता है/और कभी-कभी स्वयं उन अण्डों को खाता है/किन्तु वह अपनी वंश-वृद्धि करता है/सँपेरे की बीन पर वह झूमता और अपना फन हिलाता है/और बीन के बंद होते ही/वह फुँफकारता है और अपने जहरीले दाँतों से उसे डँसता है।

पेशे में गुंजाइश देख कर/बहुत तेजी से इस देश में/सँपेरों की जाति बढ़ गयी/अन्ततः अब इस देश में/सामान्यजन के लिए कोई स्थान नहीं बचा/अब यही है मेरे देश की कथा।

दोस्तो ! खेतों और देश को देख कर/क्या तुम्हारी आँखें आँसुओं

से गीली नहीं होतीं ? क्या तुम्हारे शरीर में/उन नीच अपराधियों के खिलाफ/घृणा नहीं फूटती/जो तुम्हारी फसलों के सीनों में खंजर घोंप रहे हैं ? उन शहीदों की गणना करो/जिनके प्राण जनतंत्र के नाम पर ले लिये गये/इन कमीनों की नहीं/जो स्वेच्छापूर्वक मूक बने/दासता का जीवन जी रहे हैं ।

ओ मेरे लोगो ! सर्प के शाप से तुम्हारा जीवन भस्म हो चुका है/ आओ ! मैं तुम्हें एक नया गीत देता हूँ/यह गीत तुम्हें एक नया जीवन देगा/यह तुम्हें एक नयी यात्रा देगा/सँपेरों की कला छोड़ो/और सर्पों को मारने की पवित्र दीक्षा लो ।

इस देश में झुकने वाले मनुष्य के/झुकने और सलाम करने वाली संतानें पैदा हो रही हैं/इस अपशकुनी लक्षण का उदय/हमारी जनता के विनाश का प्रतीक है/झुकने वाले आदमी को मारो/यह धरती तुरंत अपने-आप साँपों से मुक्त हो जाएगी/उसकी दुर्गन्ध को हवा में सूँघो/और माँ के गर्भ में ही उसका संहार कर दो/क्योंकि उसे हक नहीं है/कि वह मेरे देश की वायु सेवन करे/और यहाँ का पानी पिये ।

मैं उसे उसकी श्वास की दुर्गन्ध से/मेरे देश के वातावरण को/हर्गिज दूषित नहीं करने दूँगा/याद रखो/यही हमारा वास्तविक शत्रु है/मैं अपने भीतर कैद नरभक्षी राक्षसों को उस पर छोड़ दूँगा/और उसके विनष्ट होने तक/अपनी आँखों से नींद को निष्कासित कर दूँगा ।

दिन के द्वारा शोषित और निर्वासित सूर्य/अपने जीर्णशीर्ण वस्त्रों के साथ/ पश्चिम के मैदानों की ओर चला गया/अपने हल को एक ओर रख कर/ कैसे भी मैं/शाम के शेष टुकड़ों से अपना विपन्न गीत निचोड़ता था/एक अर्धचन्द्र मेरे अनजाने ही उदित हुआ/खंडित सिर की तरह/और रक्तिम कांति टपकाता/एक क्षण में विलीन हो गया ।

कितना प्रयत्न किया/किन्तु रात का स्वागत करने के लिए/मुझमें एक जम्हाई तक नहीं फूटी/द्राक्षोपनिषद के एक-दो पृष्ठ पलटाये/और फिर बिस्तर से तकरार किये बिना/अपने अवयवों को उसके हवाले कर दिया ।

एक भयानक स्वप्न में मैंने देखा/कि इस देश के बच्चों को पतलून

और बुशर्टधारी कबन्ध/खींचे लिए जा रहे हैं/और उन्हें चींटियों में परिवर्तित करके/स्याही के समन्दरों में फेंक रहे हैं/हठात् चीख कर मैं अपने स्वप्नों से उछल पड़ा/खिड़की में लौ तूफानी आँधियों को देख कर काँप उठी/घोर अंधकार व्यापा और/मेरे घर को निगल गया ।

मैंने अपने विशाल पाँवों को बाहर के रास्तों पर रखा/जबकि मनुष्य की पगध्वनि/धीरे-धीरे विलीन हो रही थी/और आकाश में/महान् नक्षत्र-पुंज/नींद के खुमार में डूब रहे थे/आतुरतापूर्वक मैं पूर्व दिशा की ओर भागा/सूर्य की प्रथम किरणों को बटोरने के लिए/उषा मेरे गाँव की सीमा के बाहर ही/ठिठकी खड़ी थी/कितना असहनीय था वह क्षण ।

रक्ताभ नेत्रों से/अपनी मुट्ठी में बन्द तूफानों को/मैंने दुनिया पर/फूँक मार कर छोड़ दिया/दूसरे ही क्षण पूरब की कुटिया पर/सूर्य/बाँग देते लाल मुर्ग की तरह प्रकट हुआ/मेरा क्लांत शरीर/प्रातः की एक नव्य किरण की चुभन से/मूर्छित हो कर गिर पड़ा ।

प्रातःकालीन धूप मेरे दरवाजे पर आयी/और दरारों से झाँकने लगी/शायद दिन जल्दी में था/वह अस्त-व्यस्त भागता हुआ आया/पूरब में सूर्यास्त और पश्चिम में सूर्योदय पहने हुए/उसकी आँखें डरे हुए पक्षियों सी दिखायी दीं/और पाँव/चट्टानों पर लुढ़कती निर्झरिणी-जैसे ।

अचानक चैत्र मास आ पहुँचा/मैं उस महान् अभ्यागत के आतिथ्य के योग्य नहीं था ।

दिन भर जोतते रहने के बाद/थकान से चूर हो कर/मैं एक वृक्ष की छाया में बैठ गया/अपने चिंतन को पतंग की तरह उड़ने को छोड़ कर ।

पत्ती की नन्हीं-सी छाँह में/थकन मिटाता एक पंछी/आकाश में भटकते बनजारे बादल की गतिविधि का पीछा कर रहा था/यह जानने को आतुर/कि वह नीली गहराइयों में कहाँ पिघल जाएगा/ताकि वह खुद भी वहीं जा कर पिघल जाए ।

तभी शरारती वृक्ष ने मुझ पर बूढ़ी पत्तियाँ बिखेर दीं ।

आज घनी अमावस है/फिर भी तारामंडलों की बस्तियाँ/आकाश के परे अपनी आँखें खोले हैं/मेरे मस्तिष्क में/चिन्तनों के विशाल जंगलों में/आग सुलग गयी/निद्रा एक भयभीत पक्षी के समान/अपने नीड़ को जलते हुए शून्य को अर्पित कर/उड़ गयी/मेरी खिड़कियों की सलाखों से दूरो/आकाश की दूरियों में/घने जङ्गलों की भूमि पर/वृक्षों की सेनाएँ सजी हैं/आँधियों का युद्ध जारी है/क्रोध से पागल हवाएँ/चारों ओर भटक रही हैं/पर्वतों के सिरां और शरीरों से उतर कर/नदियाँ रक्त की धाराओं-सी बह रही हैं/मनुष्यों के नगर और गाँव/निश्चय खो कर/अज्ञान और अकस्मात अवस्था में काँप रहे हैं/अंधे पाँवों पर शरीर भाग रहे हैं/अपने हाथों में ताजे कटे सिरों को लटकाये हुए/गलियों में रक्त टपक रहा है/और कटे सिर/अपने डरावने जबड़ों से/इन विनाशकारी सभ्यताओं को शाप दे रहे हैं/

पृथ्वी अपनी काया विस्फोट करती है/और फेंकती है अपने अवयवों को/सहस्रबाहुओं से/किल्लोलित समुद्र तरङ्गों में/और···

मेरी खिड़की में/दो वर्षा-बूँदों की खटपट का शोर है।

सातवाँ सर्ग

ओ मृत प्राणियो ! हाड़-मांसहीन छायाओ ! देखो/गिद्ध तुम्हारी बस्तियों पर मँडरा रहे हैं/यह मत समझो कि ये खामोश वृक्ष गूँगे हैं ।

झोपड़ी और महलों की मिश्रित सभ्यता में/तुम सब/आत्महत्या कर रहे हो/और दावा यह करते हो कि तुम/बौद्धिक प्रगति की ओर बढ़ रहे हो/तुम्हारे अकादमिक भाषण/मासूम भाषाओं के साथ/क्रूर बलात्कार करते हैं ।

जलती हुई धरती से जन्मने वाले वृक्ष/स्वाभाविक रूप से/मनुष्य को/शीतल छाँह की भेंट प्रदान करते हैं/उन जंगलों में/जहाँ हवाओं का शासन है/आत्मगौरव गँवाये बिना भरपूर एकान्त में मनुष्य ध्यानमग्न हो सकता है/और तुम्हारे नगरों में/अतीत के बोझ की तरह/आधुनिक मार्गों की पीठ पर/एक बैलगाड़ी घिसटती है/जिसके पास से चमचमाती कारें/बिजली की मानिन्द निकल जाती हैं/ऐसा अनुभव होता है/जैसे मनुष्य के अहम् को चार पहिये लग गये हैं/जो चले जा रहे हैं/फूलों पत्तों और अतराफ के वृक्षों की कानाफूसियों को अत्यन्त निर्लक्ष्य करके ।

अतीत और वर्तमान आधुनिक रास्तों पर मिलते हैं/और एक-दूसरे को उपहासास्पद नजरों से देखते हैं/आज सृष्टि की समस्त वस्तुओं को/मानवीय दृष्टि में/मूल्यहीन बना दिया गया है/वह चील/जो आधुनिक वायुयान के संग उड़ रही है/सिर्फ एक पक्षी नहीं है/वह वो पुरातन पक्षी है/जो सुनील ऊँचाइयों से देखता है/उदित और पतित होती हुई मानव सभ्यताओं को/इतिहास के पृष्ठों पर/सभ्यताओं को पताका की तरह लहराता है/अपने बड़प्पन का प्रतीक मनवाने के लिए/आदमी के बड़प्पन के बार-बार दुहराये गये हास्य-नाटक को देख कर/पहाड़ हँसी से गूँज उठते हैं/समुद्र के चेहरे पर/व्यंग्यपूर्ण हँसी खेलने लगती है/आकाश हँसी

से लोटपोट हो जाता है/और पुरातन जङ्गल/जिनके गर्भ में विमुक्त आत्माएँ वास करती हैं/व्यंग्य-मुद्रा में सिर हिलाते हैं।

ओ मानव ! तुम्हारे पाँव तुम्हें कहाँ ले जा रहे हैं ? वे पाँव जो अहङ्कार भरी सभ्यता के बोझ से झुके जा रहे हैं/सुनो/सदियों की दीवारों पर आँधियाँ चीख रही हैं।

आठवाँ सर्ग

यह गीत वर्षों पूर्व मुझे छोड़ कर चला गया था/आज फिर इसने मेरे अधरों के द्वारों पर अपने चरण रखे हैं/यह घाटी हमारे गीत बुन रही है/चन्द्रमा मेरी खिड़की में आ गया है/और उसने फिर से/मेरे भीतर की आग को सुलगा दिया है।

हल मेरे हाथ में/एक नाग बन गया है/खेत में मेरा काम/पाँव की जंजीर बन गया है/मधुमक्खियों-सी तुम्हारी बातें मुझे कभी नहीं छोड़तीं/मेरा हृदय एक नदी बन गया है/सिर्फ तुम तक बहने के लिए।

मेरा मस्तिष्क एक कमरा बन जाता है/सिर्फ तुम्हारे लिए द्वार खोलने को/खेतों से यह पुष्प/मैं सिर्फ तुम्हारे लिए लाया हूँ।

यह पुष्प एक पक्षी है/जो तुम्हारे जूड़े में नीड़ बनाना चाहता है।

जो गीत कल रात हम दोनों ने सँग-सँग गाये थे/वे अभी तक कुंजों में अटके हुए हैं/और वे फूल/जो रात में धरती पर उतर आये थे/पुनः वृक्षों तक लौटना भूल गये/कल रात/नारिकेल वनों में/चाँदनी की जो वर्षा हुई थी/वह नारियल की लम्बी फड़ों से अभी तक चू रही है/मैंने इन तमाम बूँदों को अपनी आँखों में जुटा लिया है।

मैं तुम्हें उतना ही प्यार करता हूँ/जितना सूरज धरती को/हालाँकि मैं रात में जाता हूँ और सुबह लौट आता हूँ/तुम्हें देख कर खुद को बिसारने के लिए/यदि कोई वृक्ष या घर न हो तो/मैं अपने हाथ से/एक वृक्ष की तरह/तुम पर छाया करूँगा।

इन्द्रधनु ने अपने शरीर को/हमारे खेतों पर तान दिया है/दरातियों को उठाये/चलो, चलें।

शहनाई की आवाज घाटियों में उठती है/और फिर घायल हो कर/इंसानी बस्तियों के खँडहरों में चीखती है/आदमी की इन बलात्कार-भरी रातों में/हम विवाहोत्सव रचाते हैं/तुम्हारी माँग में भावनाओं का रक्ताभ सिंदूर लगा है/जिस पर हम दोनों/इस अंधकारपूर्ण जीवन यात्रा में/अपना मार्ग पा जाएँगे/प्रथम जाग्रति की रात में/उन फूलों पर/जो हमारे बदन के भार से कुचल गये/हम अजनबी संदेशों के प्रभात को सहला-एँगे।

तुम्हारे ओठों और तुम्हारे गर्भ से/मेरे मांस को/जन्म देगी सपनों की पीढ़ी/जिसके अवयवों में एक ऐसी शक्तिवान क्रियाशीलता होगी/जो मानव-जीवन से आलस्य को/भगा देगी/और समृद्धि के फलोद्यान लह-लहाएँगे/हमारे प्रेम-फल बन कर।

हमारे शरीरों की मिट्टी के धान्य/भावी आशाओं के बीज बनेंगे/वे हमारी यात्रा को/समय की सुदूर घाटियों में ले जाएँगे/जो आज की धुँधली समझ के परे हैं/हमारे जीवन के अंश/फिर मनुष्य बन कर/ताजो सुबहों में उदित होंगे।

ओ प्रिय ! हालाँकि मेरी आँखें अश्रुपूरित हैं/मेरे अन्तस्थल में प्रति-ध्वनि उठती है/उन पीड़ाओं की/जिन्हें हमने उन दुःखों से पाया है/जिनसे मेरा देश और उसके वासी गुजर रहे हैं/तुम्हारी धमनियों में/धैर्य की जो शान्त नदी प्रवाहित है/उसके बिना मैं/जान भी नहीं पाता/कि पागलपन के ज्वार पर लगाम किस तरह लगायी जाती है।

वह निःशब्दता/जिसे मैंने अपने हृदय में संचयित कर रखा है/उसे पता ही नहीं चलता/कि शान्ति किसे कहते हैं/अगर मेरे तप्त दिनों को/तुम्हारी भुजाओं का आश्रय न मिलता/और तुम्हारी दीर्घ केश-राशि/मेरी पीड़ा की रातों को पी न लेती।

मेरा देश, मेरे लोग, मेरी धरती/सब तुममें समाहित हो गये हैं/तुम्हारी आँखों में मुझे क्षितिज-रेखाएँ दीखती हैं/वे नये क्षितिज/मेरे पाँव को आमंत्रित कर रहे हैं/निर्दय सदी के द्वारा फेंकी हुई चुनौतियों को/मैं स्वीकार करता हूँ/मैं जानता हूँ कि विजय मेरी होगी/और मेरे बाद भी मेरे शब्द उन्हें पराजित करेंगे।

प्रणय की अतल गहराइयों से/मैंने विशेष योग्यता प्राप्त की है/आदमी बनने की।

दहकता सूरज

मेरा पथ

जो जनता के कोटिशः चरणों से
पुनीत हो गया—

वही है मेरा पथ।

जो मेरे देश के शरीर पर से दौड़ता
गाँवों और बस्तियों से होता हुआ
जलती हुई रक्त-नलिका की तरह
बहता है—

वही है मेरा पथ।

जिसने स्वीकारा है दुःखों के रास्तों को
प्रेमपूर्वक
संसार की खुशी के लिए—

वही है मेरा पथ।

जो लड़ता है
विद्रोह करता है
खेलता है जीवन से खिलौने की तरह
जो जीतता है—हारता है
किन्तु आगे ही बढ़ता है—

वही है मेरा पथ।
जिस पथ पर बेड़ियाँ भी देती हैं चुनौतियाँ
जिस पथ पर
दहकती पराजय भी अग्नि-ज्वाल बन कर,
जिस पथ पर
मरण भी गर्जना करता है
एक महान इतिहास बन कर—

वही है मेरा पथ।

जलता हुआ सूरज

मैं एक स्वेद-बिन्दु हूँ—
मैं एक लोक-बन्धु हूँ
जो मानव-मज्जा के पहाड़ों से
उदित होता है।
हृदयों से है मेरी दोस्ती
रहता हूँ मैं उस बस्ती में जो
दु:खों की बस्ती है।
हालाँकि मेरी मुट्ठी में
समुद्र भर इतिहास है
तो भी मैंने निर्माण किया
चुपचाप मनुष्य का।

पंख जो पक्षियों को लेकर उड़े
उन्हें लौटा कर नहीं लाये।
मैं घना अंधकार पी रहा हूँ
उन जंगलों में
जो वेदना से चीखते हैं
उन पक्षियों के लिए—
जो लौटे नहीं।
स्मृतियों का दामन थामे हुए
मैंने स्वयम् को
अपने देश के चरणों से लपेट दिया
सिर जो वृक्षों की डालियों से लटके थे
आज फूल बन कर मुसकुरा रहे हैं।

हृदय जिन्होंने गोलियाँ खायी थीं
आज मन्दिरों में घंटियाँ बन कर बज रहे हैं।
कितने लोगों ने
अपनी रातों का रक्त निचोड़ कर अर्पित किया
इस दिन को लाने के लिए—
वे सभी लोग आज हिम-बिन्दु बन कर
हमारे बरामदों के छज्जों से मात्र टपक रहे हैं।

देखो, मेरी मुट्ठी फौलाद की है
मैं काल की कठोर शिलाओं से खोद कर
एक अग्नि-ज्वाल निकालूँगा
और मेरा विरोध करने वाली
सदियों की नींद को जला दूँगा।
जो नदियाँ विरह-ताप से
समुद्र की ओर भाग रही हैं
उन पर मैं चीखता हूँ—
रुको !!
और आदेश देता हूँ कि
इस बंजर, रंगहीन भूमि को
हरे रंगों से सज्जित कर दो।

मैं उस मुसकुराहट को
वापस लौट आने के लिए आमंत्रित करता हूँ
जो इस देश से भाग गयी थी
भयभीत हो कर।
उस तितली को जिसे एक पुष्प की चाह है
मैं एक संपूर्ण उद्यान देता हूँ।
बच्चों से कहता हूँ कि
रात के टुकड़ों को
चाँदनी में भिगो कर चबा-चबा कर खाओ !

मैं सूर्य को भी धोखाधड़ी नहीं करने दूंगा—
आज के पावन-दिवस पर
यदि इस देश की दिगन्त-रेख पर
सूर्य उदित नहीं होता है
तो मैं अपने जलते हुए हृदय को
चीर कर वहाँ रख दूँगा…
और अपनी रक्तिम मज्जाओं से प्रकाश फैला दूँगा।

मैं

मैं नींद से निकलता हूँ
और
फिर स्वप्नों में लौट जाता हूँ।
मैं वह दर्द हूँ
जो दुनिया को नहीं देख सका।
स्वप्न—
जो मैं रात में देखता हूँ—
वे पुल हैं
जिन्हें मैं दिनों पर निर्मित करता हूँ।

मैं वह स्वर हूँ
जो गीत नहीं बन पाया।
मेरी भाषा ने स्वयं में
पीड़ाओं को भर लिया।
मैं वह पर्वत-श्रेणी हूँ
जिसने अपने अधरों पर
मौन को वरण कर लिया,

मैं वह अन्तिम रात्रि हूँ
जिसके नक्षत्र
अँधेरों की गुलामी को तोड़कर
मेरे वाक्य बन कर
सूरज में तदाकार होने को दौड़ रहे हैं।
मैं वह वर्तुलाकार गीत हूँ
जो हर रोज उदय-शिखर पर
रक्तिम आभा बिखेरता है

सूर्य का अपना गाँव

मेरे शब्दों के देशों में
जहाँ सूर्य कभी अस्त नहीं होता
वहाँ केवल दिन है
जिसमें स्वेद के मुकुट पहने हुए देवतागण
धूप-स्नान करते हैं
वहाँ नक्षत्रों के जंगल नहीं...जहाँ
अंधकार शासन करता है ।

मेरी आँखें जब मुँदती हैं
तो सोती हुई सेब होती हैं,
और जब खुलती हैं
तो बालियों पर हँसती हुई स्वर्ण-धान्य ।
यहाँ तक कि मेरे खर्राटे भी
विश्व की नींद को भंग करते हैं
मेरे युद्धों के धुँएं से उभरते हैं
मेरी कविताओं के चेहरे,
मेरी आवाज की गर्जना से डर कर
कविगण
जो समय की अलगनी पर लटक रहे हैं
कौवों की तरह उड़ जाएंगे ।...
मैं जब चलता हूँ
तो मेरे कदम वज्राघात होते हैं
जो मेघों में छलाँग लगाते हैं
और मैं उठाऊँ

तो मेरा हाथ एक महान् ज्वाला है
अगर मैं उसे नीचे कर लूँ—
तो वह एक संध्या है
जिसमें से असंख्य किरणें विकीर्णित होती हैं।
मेरा शरीर एक शाश्वत होम है
वह सूर्य का अपना गाँव है।
यह सूर्य
जो प्रत्येक दिन क्षितिज-रेख पर चढ़ता है...
अगर मैं चाहूँ तो उसे अपनी ऊँगली में
एक छल्ले की तरह चढ़ा सकता हूँ।

पतझड़

इस सदी की सलामती का जाम पीने के लिए
एक शाम मैंने अपना मधु-पात्र उठाया
और मदिरा में मैंने
झरती हुई पत्तियों की छायाओं को देखा !

जीवन के क्षण
ऐसे झर रहे थे—
जैसे हेमन्त में पत्तियाँ।
आशाएँ
उषाकाल के नक्षत्रों-सी
विलुप्त हो रही थीं ।

इस सदी ने भर दिया है हाहाकार
उस वायु में
श्वास लेते हैं हम
जिसमें अपनी आयु के लिए,
यह विश्व एक विष-पात्र है
जबरन थमा दिया गया है
जिसे मेरे हाथ में,
वह तेजस जो सूर्य दे रहा है
हविष्य की तरह
मिल रहा है मिट्टी में।

इस रेत में
मानवता की लहरें खो गयी हैं।
मेरा देश सभ्यता को उतार कर
नृत्य लीन है
आकांक्षाओं के आर्केस्ट्रा में
आवेश बढ़ता जा रहा है
प्रश्नों की सेनाएँ
गलियों में परेड कर रही हैं—
इस भयानक दृश्य पर सूरज
कब उदित होगा ?

वह एक दिन जाग्रत होगा
हजारों किरणों के सँग
और जीवनदान करेगा
उन करोड़ों वृक्षों को
जिन्होंने खो दिया है अपने पत्तों को...
मित्र ! इस शाम
वह अश्रु-बिन्दु
एक समुद्र की तरह क्यों है ?
पीओ
आशा-मधु का
एक घूंट पिओ !
और आने वाली उषा के लिए
हिल्लोलित हो जाओ !!

एक ही

वहाँ कई पत्थर होंगे
किन्तु वह पत्थर तो एक ही है
जो फासले नापता है !...

वहाँ कई पक्षी होंगे
किन्तु वह पक्षी तो एक ही है
जो अकेलेपन को ओढ़ कर
क्षितिज से आँख मिलाता है !...

वहाँ बहुत सी दिशाएँ होंगी
किन्तु वह दिशा तो एक ही है
जो निगाहों के रहस्य से बात करती है।

वहाँ कई शब्द होंगे
किन्तु वह शब्द तो एक ही है
जो तुम्हें बताता है कि
इस धूप-छाँह के संगम में
न तुमने कुछ पाया है
और न खोया है !...
मेरी पूरी वयस् के घिस जाने के उपरान्त
जो अंश बचा है
वह मेरा अस्तित्व है—
केवल वही मेरी स्मृति है।

चुप्पियाँ

मानव-बाजारों से खदेड़ी हुई
चुप्पी
शरण लेने को पहाड़ों में चली गयी।
समय, उँगलियों से रिस रहा है
पानी की तरह
और ऋतुएँ
मकड़ो की तरह आँखों की घाटियों में
रेखाओं को बुन रही हैं

पहाड़ियों की निःशब्दता को जब मैं
बूँद-बूँद पीता रहता हूँ
तब मैं अपने हृदय को भी क्षमा नहीं कर सकता
जो मेरे अन्दर धड़कता रहता है।

एक पक्षी के गीत से मैं
अरण्य की थाह पा लेता हूँ
या फिर एक निर्झर से···

जब जंगल में
अग्नि-ज्वालाएँ काषाय वस्त्र धारण किये
संन्यासियों के झुण्डों-सी भागती रहती हैं
तब मैं
वृक्षों के शरीरों का आलिंगन करके
उनके दिल की धड़कनों को सुन कर
जोर-जोर से रोता हूँ।

क्षितिज

आकाश को छतरी की तरह बन्द करके
क्षितिज-रेख
मुझमें सीधी उतर गयी।
मेरे भीतर
जंगल, नदियाँ, पहाड़, गाँव और शहर
सीधी, वर्तुल, त्रिकोण, चक्र-रेखाएं बन कर
दौड़ते हैं—
एक धड़कते हुए बिन्दु में···

नदियाँ लौट कर पहाड़ों में बह जाती है
पहाड़ अपनी कन्दराओं में चले जाते हैं
मनुष्य वृक्षों में विलीन हो जा रहे हैं
वृक्ष पुष्पों में समा जा रहे हैं।
पुष्प फलों में
और फल बीजों में
और बीज धरती में
और धरतो आकाश में, और
आकाश क्षितिज में एकाकार होता है...
क्षितिज आकाश को खोलकर
मुझमें से उड़ जाता है
और सागर-शैया पर लेट कर
फिर से नक्षत्र-मण्डलों को घूरता है
मुझे पुकारता है—
आओ ! आओ !! आओ !!!

यूकेलिप्टिस का जंगल

बाहर आकाश पुकार रहा है—
आओ ! चलें !!
उन यूकेलिप्टिस के जंगलों में दौड़ें
जो चर्चों के शिखरों की तरह उन्नत हैं,
जहाँ लाल कमेलिया
नि:शब्द माधुर्य में सो रहा है
चलो, उन आसव-धुत्त मेघों से मिलें
जो पहाड़ों के दिलों पर नशे में कूदरहे हैं।

स्वेद-बिन्दुओं को धान्य के मोतियों में
परिवर्तित करें
धरती के घावों को सहलाएँ
चलो, प्रेम-वर्षा करें।

ये मित्र तुम्हारे-मेरे मध्य क्यों हैं ?
ये तुम्हारी मोतियों की माला की तरह
हमारे ओठों के बीच आते हैं
ये तथाकथित मित्र
एक झूठ हैं—आज की हरेक वस्तु की तरह
जिससे काल सचाई का स्वर्ण चुरा कर
भाग गया है।

हम एक बार इन्हीं वृक्षों के नीचे मिले थे
जो दिन में संचित सूर्य की
प्रिय स्मृतियों की जुगाली करते हैं
रात को छाँह में।
यहाँ इस तारामंडल की छाँह में
जो मानवता की भूमि पर
शाश्वत थकी यात्रा में सम्मिलित है।
और इसी मिमोसा की शाखा के नीचे—
जहाँ डेलिया, कमेलिया, लिली, डेजी
और इसी प्रकार के फूलों को
इस इन्द्रनील पर्वत में संचित करके
मैंने तुम्हारा पूजन किया—
इस हरे निकुंज के पीछे छिप कर
अपने बुरुश को रंगबिरंगे भावों में डुबो कर
मैंने तुम्हारे चरणों पर
शरारतन पिकासो के चित्रों की
अनुकृतियाँ बनायीं...
तब परिसर एक दूसरे से रंगीन भाषाओं में
कानाफूसी करने लगे
और निर्झरणियाँ नील पानी के कागज पर
मछलियों की लिपि में
अनिर्वचनीय मधुर कविता लिखने लगीं।

आओ—
हम उन जंगलों में दौड़ें
जो संचयित कर रहे हैं उन संदेशों को
जिन्हें सूरज ने मनुष्य के लिए
हेमन्त-पत्रों पर लिखा था।

मक्खियाँ

मेरे हृदय पर मक्खियों की तरह
कूड़े-कचरे सा आकर मत बैठो,
उस तरह मत काटो
जैसे चूहा रोटी कुतरता है।
कष्टों की लपटों से
तलवारों की तरह उठो
और विश्व की प्राचीरों पर अंकित कर दो
वह शुभ दिन
जब मक्खियों ने चीलों को भगा दिया था।

खेतों में लेटे हुए धान्य के हृदयों में
जलते शब्दों को सुनो—
वे तुम्हें पुकार रहे हैं।
वह जो अपने कंधों पर हल उठा कर
अपनी भूख कमाता है
उसी का हक है
उस भूख को मिटाने का भी।

जो फसल इस साल उगी
अगर उससे इसके दुःख नहीं मिटे
तो अब के बरस
केवल वे ही हाथ खेतों में उगेंगे
जो दरातियाँ थामे हुए हैं

मेरी धरती : मेरे लोग

मैं वह पथ बन गया हूँ
जो तुम्हारे बढ़ते हुए कदमों के स्वप्न देखता है
हम सब तूफानों में से गुजरते ही आये हैं।
एक नन्हा नक्षत्र दिन नहीं बना करता
हमें दहकता हुआ सूरज चाहिए ।
मैं तुम्हारा ध्वज बन कर आकाश में लहराऊँगा
आओ, चलें !
किन्तु मेरे हृदय पर
मक्खियों की तरह—कूड़े-कचरे सा आ कर मत बैठो।

जहाज का टूटना

मेरी चेतना के क्रुद्ध तूफानों में
एक जहाज डूब गया—
जलते हुए सूर्यों का सामान लादे हुए—
उसके भग्न टुकड़े
दूर-दूर के तटों तक पहुँच गये होंगे
समय, पैसेफिक-सागर की विशालता जितना
मुँह फाड़ कर जम्हाई लेता है
और घूरता है
अस्त होते हुए तारामण्डल को।

आकाश ने बेचैनी से रात व्यतीत की
नक्षत्रों की आँधियों से बाधित हो कर।
मैं लपटीली आँखों से खोज रहा था
अपनी कविताओं के बिखरे हुए अवयवों में
नीले आकाश की चिंदियाँ
जो ठसाठस भरी हैं
आकाशगंगाओं के खण्डहरों से
मेरी आवाजों की प्रतिध्वनियाँ
आक्रमण करती हैं मुझी पर
चीखती हैं कि
जिन रंगों को पिछली रात निगल गयी
वे अभी तक नहीं उभरे।
क्रोधित, अशान्त, मांसपेशियाँ फड़क रही हैं
उफनते समुद्र की तरह

मेरी कविता ने भयभीत हो कर
मुझे देखा और काँप उठी ।

फलों के गुच्छे

मैं सूर्य को खा रहा था
निवाले बना-बना कर चबा रहा था
मेरे ओठों के कोनों से
लाल किरणों का रस टपक रहा था।

वह बनजारा एकाक़ीपन
जो जंगलों में भटकता रहता है
अचानक मेरे सामने आ गया।

फल निर्दय पशु हैं
जो काल का शिकार करते हैं,
निगाहें पतंग हैं
जो नीले आकाश में उड़ती हैं,
चुम्बन की प्रतिध्वनियाँ
मेरे कपोलों को सहलाती हैं।
फुसफुसाते हुए फूलों को दंडित करने के लिए
अपनी चुप्पी मैंने उन पर फेंक दी—
उसके समक्ष
जो मृत्तिका से जीवन को शिल्पित करता है
उसके समक्ष
जो शून्य से रेखाओं को मोड़ता है।
आकार उसके समक्ष
नम्रता से झुक जाते हैं—

आकाश जो शून्य में कैद है
स्वप्न देखता है उस सीधी रेखा के
जो सूर्योदय और सूर्यास्त के रंगों में
स्नान करती है।

सूर्य-बिन्दु

अँधेरों के गिद्ध
मेरे नेत्रों को खा रहे हैं
घनी खामोशी की घंटियाँ कानों में गूँज रही हैं
मैं, सबसे पहले उदित होने वाले
किसी भी नक्षत्र को दंडवत करने को प्रस्तुत हूँ।

अन्ततः मैंने अपने स्नायुओं को कस लिया
अपने रक़्त-बिन्दुओं से दीपों के तोरण बनाये,
अब हवा तो क्या
आँधियाँ भी इन्हें बुझा नहीं सकतीं।

अंगूर का रक्त-पान करके
जिस कोमल मादकता का सुख
तुम भोग रहे हो
वह जीवन-तृष्णा है अंगूर की
तुम्हारे हाथों कुचली हुई।
यह सब कब तक ?
केवल तब तक
जब तक कि एक सूर्य-बिन्दु
रात्रि के दूध में टपक जाए।

हरिण

एक कबूतर की तरह
रात मेरी छाती पर उतर आयी
एक छोटी-सी मुसकान से मैंने
दुःखों के तूफान को मिटा दिया ।

तने हुए धनुष की तरह
अपनी कलम को उठाये हुए
स्वप्नों में मैंने हरिणों का पीछा किया ।

हालाँकि एक आँसू ने मुझे छला
फिर भी चन्द्रमा ने अपना श्वेत ध्वज
विश्व पर फहरा ही दिया ।

शान्तियात्रा

मेरी आत्मा चलने को कहती है—
आओ, चलें
दूर-दूर सीमान्तों तक
इतनी दूर
जहाँ मनुष्य के हाथ भी न पहुँच सकें
पर्वतों की गोद में,
अरण्यों के गर्भ-कुहरों में।...

हवाओं की रेल में छलाँग लगाती है वह ?
मेघों के कारवाँ में शामिल हो जाती है वह ?
कहती है मुझसे बढ़ी हुई प्यास
बुझाने के लिए,
उस निःशब्दता की प्यास
जो चमक रही है दिगन्त-रेख पर
और
कहती है पलायन करने को
उन नग्न वृक्षों की बस्तियों से
जो पीछा करती हैं मेरा
स्वप्नों में भी।

मात्र एक स्वप्न देखने के लिए
देखती है यह असंख्य स्वप्न

सिर्फ एक स्वप्न तक पहुँचने के लिए
उड़ता है जिस स्वप्न में पंखों पर
संपूर्ण प्राणी-संसार
मधुर अक्षरों को हवा में बिखेरते हुए।
जिसमें एक झड़ता हुआ पत्ता भी
उतरता है गीत की नाव में
तैरता और खेलता हुआ
भूमि को स्पर्श करने से पूर्व
उस स्वप्न में—
जब सूर्य आकाश के नीले कमरे में
प्रवेश करता है
तो आँखें खोलती हैं पहाड़ियाँ
जंगल जाग उठते हैं और
बनजारों-सी भटकती अलस हवा में से
स्वप्न ऐसे बिखरते हैं
जैसे पुष्प से पराग।

जहाँ भीड़ों से अपने को पृथक कर—प्राण
निमग्न होता है ऐकान्तिकता के आनन्द में नहाते हुए
अनुभव करता है एक भ्रातृत्व
उस निःशब्द से
जहाँ ऊँचे वृक्षों की कतारें
हलचल करती हैं
खामोशी के जुलूसों की तरह।
जहाँ धरा आकाश का
विवाहोत्सव मनाया जाता है
पहाड़ियों के मंडप में।
जहाँ एक अनाम पक्षी के
शाखा पर मात्र बैठ जाने भर से
सारा परिवेश परिवर्तित हो जाता है
एक कविता में,

जहाँ एक यूकेलिप्टिस का वृक्ष
संध्या में स्नान करके
आगे आता है—
पत्तों की नोकों से
पुष्पों के लाल बिन्दु टपकाता हुआ ।

जहाँ लाड़ला चन्द्रमा
घर की छत पर झुक आता है
एक निवाले की तरह
और प्रेरित करता है लपक कर
मुट्ठी में बन्द कर लेने को ।
वहाँ...
उन स्वप्न की घाटियों में...
आओ, हम चलें ।
मेरी आत्मा कहती है...
"इन नग्न वृक्षों के पंजों से छूट कर
भाग चलें ! शान्तियात्रा पर !
मेरी आत्मा कहती है ।

मेरे देश की रीढ़ की हड्डी

कागज की नावों में स्वप्न—
यात्रा कर रहे हैं
समुद्र के मार्गों पर
अपने ध्वजों को फहराते हुए
काल के बन्दरगाहों से गुजरते हुए
अपने गन्तव्यों तक
पहुँच रहे हैं
गाते हुए उस जन-शक्ति का गीत
जिसे कोई कभी भी जीत नहीं सकता।

वह जन-शक्ति
जो मिट्टी को धान्य में बदलती है
और एक सभ्यता कातती है
सिर्फ धुएँ से—
चली जा रही है उस सुन्दर दिशा की ओर
जो गर्भवती है सूर्य से।

झुके हुए देश के लिए
एक विशाल गगनचुम्बी रीढ़ की
हड्डी के निर्माणोत्सव में
जो हिस्सा ले रहे हैं
वे दौड़ रहे हैं

छाती के दोनों ओर
जाति की भुजाओं की मांसपेशियाँ
बनकर खड़े रहने के लिए।
इन स्वप्नों की रक्तनलियों में
रक्त नहीं, बल्कि वह प्राण बह रहा है
जो बलिदान हो गया
भावी पीढ़ियों के लिए।

ये स्वप्न हवाओं में मिश्रित हो कर
चले जा रहे हैं
फूल बन कर गिरने के लिए
उन लोगों की समाधियों पर
जिनके हृदय में
ये स्वप्न शिशुओं की तरह झूल रहे थे।

कागज की नावों में
स्वप्न यात्रा कर रहे हैं।

खोया हुआ चेहरा

कृशकाय हो गया हेमन्त का चन्द्रमा
रो-रो कर—
सो रही हैं दीवारों में ईंटें
जम्हाई ले रही हैं सड़क की बत्तियाँ
हाथ में लिए एक छोटा-सा नक्षत्र
खोद रहा हूँ मैं एक रहस्य को पाने के लिए
अंतरात्मा की गलियों को।

कई करोड़ों रात्रियों के रहस्य की
परतों के नीचे से निकल पड़ा
हजारों किरणों के संग
मनुष्य का खोया हुआ चेहरा—
मैंने कहा—हमारी नस-नस में
बह रहा है रक्त बन कर
तुम्हारा कान्तिमंडल
जो रुकता नहीं हमारी निद्रावस्था में भी।

चढ़ो—
हमारी उदय-रेखा के शिखरों पर,
यह संसार हमारा है
बाँट लेंगे हम दोनों मिल कर
एक ही लाल कमल को।

सड़क की बत्तियाँ की ज्वालाएँ कूद पड़ीं
हाथ में जो नक्षत्र उड़ गया
वृक्ष की शाखाओं में,
सड़क की बत्तियों की ज्वालाएँ कूद पड़ीं
बाहर गलियों में,
घरों को गिराने लगी ईंटें
नींद से जाग कर,
आकाश से कूदा चाँद
और उसने सबको बाँट दी चाँदनी।

बुलाते रास्ते

पूर्व में उठती हुई ज्वालाओं को देखो
वे अपर्णा पुष्पों की लाल मालाएँ हैं
जिन्हें संसार की दलित मानवता उठाये हुए है।

हम दीवारों से खींच लेंगे
अपनी इच्छाओं की बन्दूकें
और धूप की तरह
पहाड़ियों और घाटियों में बहेंगे।

पूर्व में उठती हुई ज्वालाओं को देखो,
वे धरती के रक्त से निकलने वाली
लहरें हैं
रास्ते बुला रहे हैं
वे तुम्हारे रक्त-चिह्नों को माँग रहे हैं।
और आदेश दे रहे हैं—
तुम्हारे रक्तस्रावित कदमों को
आगे बढ़ने का !

अपने ज्वलित हृदयों की पताकाएँ लहराते हुए
हम आगे बढ़ेंगे
अंधकार को चीरेंगे

और सूर्य का स्वागत करेंगे।

पूर्व में उठती हुई ज्वालाओं को देखो,
वे उन शहीदों की ज्वालाएँ हैं
जो बलिदान हुए
भावी पीढ़ियों के लिए।

पिता सूर्य

वृक्षों में सूर्य
मेघों में सूर्य
अन्तराकाश में सूर्य
बहिराकाश में सूर्य—
सूर्य मेरे नाखूनों में उदित होता है।

अपनी असंख्य पत्तियों से वृक्ष
सूर्य का पान करते हैं
और विकसित होते हैं
सूर्य की सन्तानों की तरह।
वृक्ष की शिरा-शिरा में वृद्धि पाता है
सूर्य का अंश
और सूर्य को धारण करता है वृक्ष
अपने गर्भ में
समाधि में लीन रहता है शिशु सूर्य
सिमटा कर अपनी सुकुमार ज्वालाओं को।

अग्नि अन्तः सूर्य और
वृक्ष का गर्भ है अन्तर्लोक का आकाश,
चला जाता है सूर्य
बटोर कर विश्व के सारे रंगों को
छिपा कर अपनी किरणों को अग्नि में—

वृक्ष, जल, पुष्प और आकाश
सब अपना रंग खो कर
हो जाते हैं समर्पित अंधकार को
तब मानव पितृ-हीन हो कर
आश्रय लेता है अग्नि का।

जब भूमि होती है विमुख
सूर्य निक्षिप्त करता है अपनी किरणों को
मेघों में,
मेघ आकाश में
वृक्षों के सहोदरों की तरह
विकसित होते हैं
जल में परिवर्तित हो कर सूर्य
वरण करता है धरती का।
वर्ष-बिन्दु के झूले में
किलकता है मानव
अपने हाथ-पैर मारता हुआ
और सूर्य प्राची-रेखा पर
खेलता है मेरे संग
बालक बन कर।

मेरे पिता को—
जो नित्य बालक है—
मैं नमस्कार करता हूँ।

पुष्प और खामोशी

यह मद्धिम अंधेरा—
यह मद्धिम रोशनी—
यह मद्धिमता एक दूसरे में मिश्रित हो कर
लम्बे वृक्षों को
और भी लम्बा बना रही है
जो कि तनी हुई छायाओं की तरह खड़े हैं।
अपने बालों में नक्षत्रों को टाँके हुए
यह खामोशी
अँधेरे को और भी गहन बना रही है।

इस अद्वैत में
जहाँ अँधेरा निरभ्र शांति में एकाकार हो रहा है
वहीं जाग्रत होता है मेरा मस्तिष्क,
अब आवाज ही नहीं
एक छोटी-सी प्रकाश-रेख भी
इस गहरी शान्ति को भंग करती है।

ऐसे क्षणों में होता है गहन सचाइयों से
साक्षात्कार,
अभी और सिर्फ अभी मैंने अनुभव किया कि
राग, आवाज में नहीं, नीरवता में निवास करता है।

मैं जन्मा हूँ फूलों और खामोशियों से –
चलते हुए मेरा हाथ एक पुष्प से छू गया
मैंने पूछा—क्या तुम जख्मी हो गये ?
किन्तु मुसकुरा कर उलटा पुष्प ने पूछा – मैं या तुम ?
मेरी कलम का दिल टूटा और रक्त छिटक गया।
मैं नहीं जानता ऐसा कोई कागज
जो इस कलम को सह सकेगा।

नीले आकाशों को छूने वाली
अरण्यों की महान् शांतियों में
जो कठफुड़वा पक्षी वृक्षों की देहों पर
चोंच से प्रहार करके
शब्दों की प्रतिध्वनियाँ फैलाता है
वह इन छोटे-छोटे पौधों के बीच क्या कर सकता है ?

मैं
जिसने दिनों को फलों की तरह खाया
अब अंगूर जैसे आँसुओं को खा रहा हूँ।
धूप से डर कर मैंने छाँह की शरण ली
फुटपाथ पर बैठ कर
नेत्रों से स्वप्न खा रहा हूँ
चम्मच की चोंच से
जैसे कटोरे से आइसक्रीम खाते हैं।
मैं अनुमान रहा हूँ अँधेरी साँझों से
अपने जीवन को।

छन्दों से एक बार मैंने अपनी निधि को बाँटा
अब बिखेर रहा हूँ अपने भविष्य को
खुले हाथों

दसों दिशाओं
मैंने अपने हृदय को आँसुओं में डुबोकर निचोया और
कविता पर सुखाया
और जनता को शाल की तरह ओढ़े हुए गुजर गया ।

देश-देशान्तरों की ज्वालाओं की सभाओं में
मैंने अपनी बंजारा आवाज को उठाया
भूमि और आकाश को मिश्रित करके गाया ।

यह देश, मेरी प्रतिभा का श्मशान !!
चाहे जितना भी तेज चलो
फासला वही रहने को है
यह धरती मेरे रक्त की प्यासी है ।
यह देश जो बौने वृक्षों की छाया में खर्राटे ले रहा है
इसके लिए मैंने अपनी कलम
सूर्य में डुबोई
और तपते ग्रीष्म-गीत लिखने को
सफेद कागज उठाया ।

भूख

जम्हाई लेते और आँखें मलते हुए मैं जागा।
भूख, दिशाओं को जला रही है।
अलमारी पर रखे सेब की तरह।
सूरज दिगन्त-रेख पर है,
मैं स्वयम् पर चढ़ गया
उसे वहाँ से उठा कर खाने के लिए।

धूप, मांसपेशियों की तरह
आकाश-मण्डप के कंगूरों से
लटक रही है।
मैं एक क्रूर मांसाहारी हूँ।
वह आदमी
जो मुझे रोज खाता है
और मेरे पसीने का
एक गिलास पी कर
डकार लेता है—
वह खड़ा है मेरे सम्मुख
एक चमकते हुए टमाटर-सा।
मैं उसे गालियाँ देता हूँ
तिमि और तिमिंगल जैसे
बड़े-बड़े वाक्यों में
मैं उसे खा कर
समुद्र को गटागट पी जाऊँगा
इस रक्तिम प्रभात में।

बरसात

दस्तक दे रही है वर्षा
हजारों हाथों से मेरे दरवाजे पर
काँप रही हैं गली में शाखाएँ
गुण्डा हवाओं के हाथों में ।

किन दूरियों से, कैसे संदेश ले कर
आयी है यह बरखा !
कीचड़ में
मेढकों की सेनाओं के
आपस में युद्धरत होने से
बेतहाशा शोर है ।
बादलों के रथों पर आसीन
चली गयी वर्षा ।

आ रहा है सूर्य
कन्धे पर हल रखे
शिखरों पर चढ़ता हुआ ।

जिन्होंने जलदान किया था
जुहार किया चराचर जगत् ने
उन मेघों का ।
धरती में समाहित लघु बीज ने

अपनी गर्दन बाहर निकाल कर
कृतज्ञता प्रकट की—
अपनी प्रथम अंकुरित
दो पत्तियों को
हाथों की तरह जोड़ कर

सागर तुम्हारी साड़ी है

वह तुम हो
जिसने मुझे कविता सिखायी ।
तुम्हारी भाषा
मेरे हृदय की घाटियों में
एक जल-प्रपात की तरह कूद कर
बहती है
मेरी प्रत्येक धमनी और रक्त-नलिका में ।

तुम्हारे बोल कागज के फूलों पर
गुनगुना रहे हैं मधुमक्खियाँ बन कर
और वाक्य
जिनमें अर्धविराम और पूर्णविराम नहीं हैं—
जंगलों में दौड़ रहे हैं नदी बन कर ।

हेमन्त की भीड़ों ने इकट्ठे किये
जिन पत्तों के ढेर
वे पृष्ठ हैं—
जिन पर तुम लिखते हो ।
एक पसीने की बूँद के लिए
तुम अपना दिन खो बैठते हो
और दूसरों को अंजलि
धान्य से भर देते हो ।

तुम अपने शरीर पर समुद्रों को लपेट कर
हमारी नग्नता को सभ्यता से ढाँक लेते हो
तुम बीजों को निगलते हो और
फूलों को उगलते हो
इसीलिए बादल में कैद वर्षा-बिन्दु
तुम्हारे हृदय में स्थान पाने को तरसता है ।

पूर्ण विराम

मेरे सामने एक खिड़की रखो
और उसके सामने
एक हरी जमीन बिछा दो
उसके ऊपर एक घना मौलश्री का
फूल बरसाता वृक्ष रख दो
उस वृक्ष पर एक लाल रंग निगलती
फूलों की बेल चढ़ा दो
और उस बेल पर
रंगीन-कविता-सी मँडराती एक
तितली छोड़ दो—
बस मेरी जिन्दगी एक इठलाते हुए
वाक्य की तरह भाग कर
वहीं एक पूर्णविराम से मिलती है।

वक्र रेखाएँ

हृदय की भित्तियों पर
समुद्र, रेखाएँ खींच रहा है
घाव से रिसती रोशनी में
पलट रहा हूँ मैं जीवन के पृष्ठ।
बाहर टपका रहा है शोकातुर आकाश
नक्षत्र।
मैं लेट गया चन्द्रमा द्वारा बिछाये गये
रुपहले तौलिये पर तत्पर
यह सुनने के लिए
कि कब, किस क्षण, कौन-सा नक्षत्र
कानों में कौन-सा रहस्य फुसफुसा दे।

चाँदनी में अंधकारपूर्ण यात्रा करते हुए
एक जुगनू
वाक्यों की एक मंजूषा भूल गया।

मेरा वाक्य एक वंशी है

मैं एक गीत हूँ।

जंगल में सरगम बुनती हुई
मोतियों को भीड़ की तरह भागती
मैं एक निर्झरिणी हूँ।

पंखों पर उड़ता हुआ
नीलिमा से मधुरता बिखेरता
मैं एक पंछी हूँ।

उपवन में वसन्त और
अन्तर में ग्रीष्म—
ज्ञात नहीं कि जाना किधर है
मैं वह भटका यात्रिक हूँ।

मेरा वाक्य एक वंशी है
भीतर सिर्फ हवा है—
अर्थ नहीं।
किन्तु यह आवाज
इतनी मधुर क्यों है ?
ज्ञात नहीं है जिसे
मैं वह विवश गीत हूँ।

दूसरा भगवान

मेरे देश के शरीर पर तालाब
घावों की तरह हैं
और नदियाँ
रक्तस्राव-सी।

मांस की आवाज के वशीभूत हो कर
यहाँ आकाश ने मुट्ठी भर नक्षत्रों के
बदले बेच दिया सूरज को।

कागज—
जिन पर लिखा जा रहा है वर्षों से—
परिवर्तित हो गये हैं आज हिमालय में
और स्याही जिसका उपयोग किया गया
बदल गयी है आज भूमध्य सागर में।

जिन्हें मेरे देश ने देखा
वे कुछ स्वप्न—
प्रविष्ट हुए कागजों की कन्दराओं में
और संन्यासी बन गये।
और वे कुछ स्वप्न जो बच गये थे
कूद पड़े स्याही के समुद्र में
और अपने प्राण त्याग दिये।

देश की समस्त लौह-सम्पदा
खर्च हो गयी केवल कारागारों की
सलाखें बनाने में
और कुछ भी नहीं बचा
रेलमार्गों के निर्माण के लिए।

अपने कंधे पर हल उठाये
चल रहा है कृषक
क्रास ढोते क्राइस्ट की तरह।
भगवान् पचा लिया गया है
इस देश के पूजाघरों में
अब किसी दूसरे भगवान् की भूख है।

पक्षी-विहीन उद्यान

वृक्ष के अन्तरालों में से
आकाश मुझे पुकार रहा है
घरों की छतों पर से
और पहाड़ियों की चाटियों पर चढ़ कर
बादलों की भीड़ में से
आकाश मुझे पुकार रहा है।

आकाश में
एक एकाकी नक्षत्र
उँगली से इंगित कर रहा है कि
ऋतु-युद्ध में कितने फूल धरती पर
गिर पड़े।
और कहता है मुझसे कि
इस पक्षी-विहीन उद्यान को
छोड़ दो
तुम्हारा आत्मा के
चूसने के लिए
मैं तुम्हें एक चन्द्रमा देता हूँ...
आकाश मुझे पुकार रहा है।

हल

हो सकते हो तुम शायद
एक लकड़ी के टुकड़े
किन्तु एकमात्र प्रतीक हो तुम
उस महान् कृषि-श्रम के
जो जन्मा था पुरातन काल में।

शायद,
तुम्हारा ही नाम है 'हल'
किन्तु तुम वह जलते हुए अक्षर हो
जो गिर पड़ा आकाश से धरती पर
नक्षत्रों की भाषा बिसार कर।

धरती में सो रहे स्वप्नों के
परिमलों को जगा कर
दिशाओं में बिखेर दिया
तुम्हारे स्पर्श ने।

तुम्हारी शक्ति के समक्ष
अवनत हुए
अरण्यों, पहाड़ियों, नदियों
और निकुंजों के मस्तक
और समर्पित हो कर तुम्हारे वीर्य को

भूमि ने महान आनन्दपूर्वक
दान दे दिया खुले हाथों
फल, घर, कविता आदि का।
उस दिन इतिहास के चरम पृष्ठों पर
खींची तुमने एक ज्वलंत-रेख
मानव-जाति के मध्य से—
काम-चोर और कर्म-शूर के बीच।
और श्रमजीवियों के जगत् को
वाग्दान किया तुमने
एक नवीन सूर्य का।

गुरिल्ला

१

घर की छतों पर रात/भौंक रही है/अर्धाकार पडुलम के झूले में वक्त/सो रहा है/बच्चे की तरह ।

मँद ली हैं सभी घरों ने अपनी आँखें/उनकी आवाजें बन्द हो गयी हैं/मेरे भीतर से फूटी/एक आवाज/और सोना उगलने लगी/नयी पीढ़ी की कविता-लपटों में ।

कागज नहीं कर सका अपना बचाव/दीपक से चलती रोशनी के तूफान से/और अस्वीकृत विचार/लुढ़कते चले गये/कटी गर्दन की तरह/सफेद कागज की रीमों पर ।

फिर गीत ने रात के सिखाये हुए एकाकीपन के/सहज पाठ को पकड़ लिया/सभ्यता का निकास-क्षण ।

जब गीत के पंख उगे/वह अंधकारमय आकाश में उड़ गया/वह चहकती चिड़िया/जो यहाँ बैठा करती थी/उसके उड़ जाने के बाद/एक कब्र की तरह मेरा शरीर/अकेला रह गया ।

अब सूर्य/प्रातःकाल के वृक्षों में लटकता है/एक शहीद की तरह/और वहाँ कल के धुंधले जंगलों में/एक भयावनी आकृति उभरती है-गुरिल्ला !

२

जब सुबह शिशु थी/आदमी स्नान करता था/पुरातन गंगा में/अब वह पूजता है/मध्याह्न के सूर्य मण्डल को/मानवता पहुँच गयी है/अब नये युग की देहरी तक/और खण्ड-खण्ड कर दिया है/पुरातन विश्वासों के रक्त से सेवित भयों को/गुस्से में मापता है आज आदमी/भूगोल को/अपने

भूमध्य की तीसरी आँख से/उसकी आत्मा बाँग देती है मुर्गा बनकर/कुत्ता बनकर भोंकती है/और गाती है चिड़िया बनकर/आत्मा अपने देश के लिए क्या नहीं बन सकती है ?

हम न तो मूर्ख हैं न धनवान्/जो कि उलझे रहें/भगवान् पर लम्बी-चौड़ी बहसों में/कार्यरत रहने चाहिए हमारे हाथ/जीने के लिए/वह जिसे हासिल है/धरती को फल और अन्न में परिवर्तित करने का कौशल/क्यों हो हतोत्साहित ? हालाँकि हमारे देश के बाजारों में जीवन/बेच रहा है ढेरों दु:ख !

आते जाते हैं आकाश में देवता/किन्तु एक ही भगवान्/जो हमारी पहुँच में है/वह है हल/वह हमारे हाथ में है/और वह गुरिल्ला/जो सो रहा है हमारी भुजाओं में/याद रखो ! कृषक का आकाश/बरखा बरसाता है/बहारें नहीं !

३

हवा कुत्ते की तरह गलियों में भटक रही है/बिल्ली की तरह खिड़कियों में म्याऊँ-म्याऊँ कर रही है/फूत्कार रही है नाग की तरह छतों पर/वहाँ जहाँ पत्तियाँ नहीं हैं झड़ने के लिए/वह डालियों में घायल योद्धा की तरह/कराह रही है ।

क्षुधा-पीड़ित रात्रि/नक्षत्रों को/बीड़ियों-सी सुलगा रही हैं ।

अँधेरे की मूँछों से/चन्द्रकिरण के जूठे अन्न-कणों को/पोंछे बिना/बोदे स्वप्नों के पहियों पर रात/इस आशा में ताँगा हाँकती चली गयी/कि कोई मुसाफिर तो मिले/शरीर पर चाँदनी की लपटें लहराता हुआ चाँद चढ़ रहा है कारखाने पर !

नाले के किनारे की झोंपड़ी/छायारूप है/दारिद्रय-देवता के लिए निर्मित मंदिर का/हवाओं में उठ रहे हैं/आवाजों में परिवर्तित होकर/मृत वीरों के धरती पर गिरे शव ।

गिद्ध चक्कर काट रहे हैं/दूरस्थ पहाड़ियों पर/मंडलाकार/मेरे हाथ में

शिशु बन कर पुस्तक/खेल रही है वक्षस्थल पर/फेंक रहे हैं हजारों नक्षत्र/किरणों के भाले मुझ पर/एक साथ।

जो अपने मस्ष्कि को कराता है भोजन/मदोन्मत्त हवाओं का/उस गुरिल्ला ने सुना/गर्जते हुए अकाश में/एक नये युग की कण्ठ-ध्वनि को ! और करवट ली शैया पर/और सूर्योदय के साथ बाँट दिये सारे रास्ते, क्रान्ति की धूप से/मेरे ध्वज ने !!

४

इस धरती पर आत्मा/जो यात्रा करती है निम्नोन्नत/वही है असली इतिहास/देशों का/सत्य जो एक महासागर है/लेती है आत्मा उसे/श्वास की तरह।

किंकियाता नहीं समुद्र/किसी के चरणों पर झुक कर/नहीं जानती तूफान की आवाज/जी हुजूरी/सलाम नहीं करता पर्वत/किसी को झुककर/

संभवतः मैं धूल हूँ एक मुट्ठी भर/पर जब मैं उठाता हूँ कलम तो होता है मुझमें उतना ही अहम् जितना की एक देश के फहराते ध्वज में !

अपनी विपदाओं को डुबोकर आँसुओं में/उदरस्थ कर लेता हूँ मैं बिस्कुट की तरह/उद्घाटित करता हूँ मैं/इस महान् सत्य को/कि जो ज्यादा बलवान है जीवन से/वही/मात्र वही/दे सकता है आकृति/शब्द से शताब्दी तक को !

काट दो मेरे हाथ/फिर भी जुड़ जाएँगे वे/वापस आकर/एक कागज की तरह सम्पूर्ण आकाश/उड़ गया है मेरी आँधियों में/तो अब क्या महत्त्व है मेरे मार्ग में/इन नक्षत्रों की भीड़ों का/मैं सिर्फ इतना जानता हूँ कि मानवीय जीवन प्रदर्शनी है/एक पाशविक शक्ति को !

आज मेरी मेहमान हैं-स्मृतियाँ/और भर रही हैं/श्वास-हीन हवाओं से/मेरी यात्रा को/वह एक हूँ मैं/जो भागता हूँ-आँधियों, जख्मों और पियक्कड़ों की खोज में ! पर पिघल कर/कागज पर बह जाता हूँ/कविता बन कर/इन्सानी ऊँचाइयों को देखकर !

ले रहा है जन्म भूकम्प/मेरी भाषा में/बाढ़ की तरह बहता है-रक्त-जलता

हुआ/शब्दों के टूटे हुए दिलों से निकल कर/तैर रही हैं जिसमें मानव जिह्वाएँ/

झाड़ दो शब्दों के गर्दो-गुबार। दृष्टिगोचर होगी तभी/मेरी श्वेत-श्वेत वाणी कागज पर !

५

हमने इतिहास के उस अध्याय में प्रवेश किया है/जहाँ जीवन से सामना मृत्यु से साक्षात्कार की तुलना में/एक विकट समस्या है/उससे भी विकट समस्या यह है कि हम सब विवश हैं/यह गाने को समवेत स्वर में/कि सब कुछ ठीक-ठाक है !

एक जीवित आदमी के बजाय/मेरे देश में एक मृतक/बता सकता है ज्यादा बेहतर ढङ्ग से/कि जीवन क्या है ?

सोल्लास बहता जहाज/क्या बता सकता है ? समुद्र की गहराई और लहरों के गुणावगुण के बारे में/इनकी हकीकत तो वही जहाज बता सकता है/जिसके ध्वंसावशेष पड़े हैं तट पर !

ओ कवि ! अपनी कविताओं को/युद्धोत्तर शस्त्रों की तरह/अभी से मत टाँगो दीवारों पर/शार्दूल और शिखरणी जैसी/अपनी बड़ी-बड़ी बंदूकों को/चुन कर तैयार रखो !

तुम्हारे-शब्दों के देश से/मत्त कोकिलाओं को देश निकाला दे दो और आने वाले इतिहास के लिए भाँजो/अपने शब्दों को तलवारों की तरह ! पता लगाओ कि उसका वक्ष/कितनी बन्दूकों को दूरी पर है/यदि तुम्हारी आवाज गरजी/तो उसके दिल के दरवाजे और खिड़कियाँ/हो जाएँगे कम्पायमान/ये वे दिन नहीं हैं कि तुम/पोषण करो उसके स्वप्नों का/ये वो दिन हैं-कि गुरिल्ला उन्हें खाने के लिए भूख से व्याकुल है !

हालाँकि पाँव/जंजीरों से जकड़े हैं/किन्तु आकाश में-लाखों ध्वज लहरा रहे हैं !

६

आखिर मैं एक गाना गाने से/कब तक रोक रखूं अपने को/मेरी आत्मा अब असमर्थ है/इसका बोझ वहन करने में/यह देश बन गया है एक रेलवे प्लेटफार्म/मेरी छाती पर/बतानी ही होंगी एक दिन मुझे/इन आती जाती रेलों की कथाएँ। ये रेलगाड़ियाँ-जनता को नहीं ढो रही हैं, सरकार को !

तुम अभी भी अंडे में ही क्यों रहो ? मेरे मुन्ने ! एक अण्डा कैसे उड़ सकता है ?

अपने चेहरे को खोये हुए साम्राज्य सा मत बनाओ ! याद रखो ! मेहनत करने वाली मांस-पेशियाँ/बन नहीं सकती इच्छाओं की चिता/सिर्फ तुम्हे पंख देने के लिए/जाग रही है मेरी खिड़की।

जब आँखें खोलती है उषा/तो मैं और मेरी कविता के उपकरण/दिखायी देते हैं उसे/एक टूटी लालटेन की रोशनी में/अपने काम में तल्लीन !

वही है मेरी मुट्ठी के कसाव का लक्ष्य/कुर्सी ने जकड़ रखा है/उसकी मांसल देह को/वर्ना वह हो सकता है कभी भी/धरती के गुरुत्वाकर्षण का शिकार।

यदि उन्होंने मेरी रोजी-रोटी/नहीं पहुँचने दी-मेरे बच्चों तक/तो मैं उनका रक्त पिलाऊँगा/इस भूमि को।

मेरी कविता कोई ध्वज नहीं फहराती/पर मेरे हाथ मेरे देश की तलवार हैं !

७

आओ भाई, यह गुरिल्ला-युग है/मैंने परोसे हैं तूफान/पत्तल में/आओ। हम साथ-साथ इन्हें खाएँगे/और हमें/इस क्षण के ब्रम्हराक्षस को/पकड़ना है परिमाणों में/कर रहे हैं जो हमारी प्रतीक्षा।

वे चाँद की किरणें नहीं हैं/गिरती शहतीरें हैं/उनकी मार से अपने को बचाओ/अकेली बैठी/कूकती/उन कोकिलाओं को सांत्वना देते/वहाँ रुके मत रहो।

वह हवा/जो शरीर पर पराग मल कर/भाग रही है उड़ते हुए बागों में/मैं नहीं जानता/कि वह गीतों का बोझ ढो रही है/या पक्षियों का/लेकिन चैत्र के पास तो रोने का भी समय नहीं है !

लो, वे आ रहे हैं/तटों पर घूमते हुए/शिशु निर्झरों को गीत सिखाने वाले/किशोर जल/छलांग लगा रहे हैं अरण्यों में/उन गीतों को खाकर !

हेमंत वनों में/डाली से लटकता अंतिम पत्ता/तौल रहा है हवाओं में/अपने जीवन को/इस चिंता में लीन/कि आने वाले वसंत से क्या होगा उसका रिश्ता ?

हरे भरे खेतों में दिखायी देने लगीं जब बालियाँ/तो एकाएक कंपित होकर भाग गया शीत/ये नवीन हवाएँ/जो आ रही हैं/घेरती हुई चारों ओर से/कर गयी हैं मेरे शरीर के समस्त रन्ध्रों में प्रवेश ! बन गयी हैं मेरी हड्डियाँ/बाँसुरी/और नस-नस-सितार/ये सब उठा रहे हैं गीतों का समवेत शोर !

मेरी आँखों में दिख रही हैं/भावी पीढ़ियाँ/प्रभात द्वारा गिराये किरण के धानों को/चंचुओं में थामे मुर्गों के परिवार की तरह ! भैया ! निगल गयी है अमावस/तुम्हारे आकाश को ! कर रहा है बीट महाकाल/चौराहों पर स्थापित मूर्तियों पर/शीत से काँपती उन मूर्तियों को/कम से कम/अपने फटे कपड़ों से तो ढाँप दो !

किसी जमाने में एक देवता थी गंगा/उसके बाद में बन गयी नौकाओं का मार्ग/और आखिर में बन कर रह गयी/मात्र सिंचाई की नहर ! देख लो ! बदल जाते हैं देवताओं के रूप भी/समय के हाथों !

८

बन्धु ! आज हम नदी में डूबे हुए हो सकते हैं/लेकिन कल आएगा वह दिन भी/जब नदी ही डूब जाएगी समुद्र में/मैं जानता हूँ/श्वास ले रही है एक दूसरी दुनिया/तुम्हारे मस्तिष्क में/पर यदि तुम्हारा दिल अच्छा है/तो खिल उठेंगी पुस्तकें/तुम्हारे ओठों पर !

यदि तुम अपने कदम उठाओ/तो कौन-सा है वह देश जहाँ तुम उन्हें रख

नहीं सकते/श्रमलीन तुम्हारे हाथ/दिखने लगते हैं कितने सौन्दर्यवान/झलकने लगती है कितने आदर्शों की सौन्दर्य शक्ति/तुम्हारी आँखों में !

यदि तुम उगो/तो छू नहीं पाएँगी तुम्हारे घुटनों तक भी/ये विधानसभाएँ/ये महल/ये अकादमियाँ/यदि तुम निर्णय कर लो/तो भूखे खेतों की ओर छोड़ सकते हो/नहरों को विमुक्त करके/तुम चाहो तो स्वच्छन्द कर सकते हो/राक्षस कालीदास के पृष्ठों में बन्दी/अप्सराओं को !

मैं देखूँगा अपनी आँखों से वह दिन/और तब एक सुहावनी सुबह/मर जाऊँगा/संसार के समस्त रंगों को निगल कर/और उड़ जाऊंगा फिर/एक नन्हीं सी स्मृति बन कर ! !

९

ध्वज कौन लहरा रहा है ? तुम कहते हो हवा ! मैं कहता हूँ कि हाथ/किन्तु इतिहास कहता है-दोनों !

जब मैं अपने देश के इतिहास के बारे में सोचता हूँ/तो प्रकट होती है मेरे समक्ष/मेरे शिशु-हाथों को थामे हुए/एक महान मातृ-मूर्ति !

जब मैं सोचता हूँ/अपने देश की दशा के बारे में/तो करोड़ों असहाय पक्षी/माँगते हैं मुझसे/नत होकर/मेरे बलिष्ठ हाथ का सहारा !

यहाँ पर बच्चे/चल रहे हैं अपनी कोमल गर्दनों पर उठाये सम्पूर्ण भूगोल का बोझ/भाई ! मैं देख नहीं सकता तुम्हारा आहत दैन्य/यही है मेरी पीड़ा/कि क्यों नहीं करती है फिर भी/तुम्हारी आत्मा विद्रोह !

विश्व चला जा रहा है लुढ़कता/गुरिल्ला के युग में/चला जा रहा है ! हमारे पूर्वजों की शककालीन/लौह माँस/पेशियों के युग में/तुम मत रुके रहो/पुराने पृष्ठों में चहलकदमी करते हुए !

कहो ! क्या तुम प्यासे हो ? मैं रख दूँगा एक समुद्र तुम्हारे सम्मुख/किन्तु तुम्हें प्यास बिलकुल नहीं है/किसी भी चीज की/यही है मेरी निराशा/यही है मेरे समस्त स्वप्नों की समाधि/तुम इन नकली देवताओं के पुजारी बने रह कर/पूरी करना चाहते हो इस यात्रा को । यही है मेरी क्रोधाग्नि का कारण !

अरे मूर्ख ! कौन है वह देवता/तुम्हारे अपने हाथ के सिवा/जो दे सकता है तुम्हें वरदान ? तुम्हारा हाथ वह विजय-स्तंभ है/निर्मित किया है जिसे गुरिल्ला ने/युग-युग की मिट्टी से/वही हाथ/जो गंगोत्री है/सम्पूर्ण मानवीय सभ्यता की !

यदि तुम दर्पण में देखो/तो दिखायी दोगे तुम्हीं/किन्तु यदि झाँको खिड़की में/तो नजर आएगी जनता/यह मत सोचो/कि जो घास तुम खा रहे हो/उसी में है समस्त संसार/जो झुका लेता है सिर/दिखायी नहीं देते उसे नक्षत्र/नहीं होती उसकी छाती विशाल/कभी नहीं उभरता सूर्य/उसके मस्तिष्क में !

यह जीवन जो तुम्हें मिला है दान में/यह जानने के लिए नहीं/कि मरना क्या है ? किन्तु यह निश्चित करने के लिए/कि जीवन कैसे जिया जाता है ! दुःखों के पाश से छूट जाना है बहुत आसान/पर इतना सरल नहीं है सुखों के बंधन से छूटना !

तुम समझते होगे कि एक नन्हे-से पंखे से/उड़ा दोगे/इतने भयावने ग्रीष्म को !

एक महान वीर पुरुष/जो जन्म लेता है/तूफानों के गर्भ से/वह छिप नहीं सकता एक नन्ही-सी झाड़ी के पीछे/उसकी कर्मभूमि है-सम्पूर्ण मानव जगत ही !

बाहर आओ/तुम महान् उत्तराधिकारी हो/उस गुरिल्ला के/जो स्पंदन कर रहा है तुम्हारी रक्तशिराओं में/हृदय है एक विशाल मानवीय घाटी/जिसमें चलता है साहस/एक निर्मल प्रातः देवता की भाँति !

कितने कोस नहीं-किन्तु नापो ! कि कितने शव आगे बढ़ा है/हमारा आन्दोलन/बन्धु ! लो लोको ! मैं फेंक रहा हूँ अपना दिल/तुम्हारी ओर !

१०

नहीं है तुम्हारी नजरों के रास्तों का अन्त/किन्तु पक्षी भी नहीं है तुम्हारी आँखें/जो चले जाते हैं/शरण लेने/देशान्तरों में/यदि तुम अपनी दृष्टि को उठाओ ! तो यह सम्पूर्ण पथ/उठ जाएगा/आकाश तक/और यदि तुम

नीची करो/अपनी आँखें/तो सम्पूर्ण आकाश गिर पड़ेगा/भूमि पर/भाई, आगे बढ़ो/एक नक्षत्र पर केन्द्रित करके अपनी दृष्टि/लगाम मत लगाओ ! उन झाग उगलती मांस-पेशियों को/जो दौड़ रही हैं/एक मदमस्त अश्व की तरह !

जो शक्ति सो रही है तुम्हारी भुजाओं में/वही कर सकती है तुम्हारी रक्षा/भक्तों की इस भीड़ से घबराकर भगवान/भाग गया है देवालयों से/स्वयं को बचाने के लिए/मगर तुम्हारा भगवान तो सो रहा है/तुम्हारी/बंदूक की मांस-पेशियों में/तुम्हारे चारों ओर मँडराये/तुम्हारी बन्दूक की आवाज/और वही बन जाए तुम्हारा देवालय/तब तुम्हारा युग उतर आएगा/धरती पर !

इस देश के पथों पर/नहीं चल सकते कायर/हमेशा यह सोचकर डरते हुए/कोई चल सकता है कब तक कि तुम्हारा हृदय भाग जाएगा/किसी भी क्षण तुम्हें छोड़ कर !

उन नक्षत्रों को/जो झिलमिला रहे हैं तुम्हारे हृदय में/थामे रहो अपनी हथेली पर/मत होने दो उन्हें अस्त/मैं आशीर्वाद दे रहा हूँ तुम्हें/कि कट जाएँ तुम्हारे बंधन/और चमके तुम्हारे हाथ में तलवार/चलो, निडर होकर आगे बढ़ो ! पहले से ही आलोकित हो उठे हैं/तुम्हारे मार्ग/मैं आ रहा हूँ/तुम्हारे द्वार पर/चंदे में माँगने के लिए तुम्हारे प्राण/अपने महान देश के पथों पर/भावी रक्त प्रवाहों के महोत्सवों के लिए ! बन्धु ! बच नहीं सकता यह देश/तुम्हारे बाहु-पाश के आलिंगन से/तुम गुरिल्ला हो ! !

११

गुरिल्ला एक निष्पाप दैत्य है/उसका दूसरा चेहरा है पवित्र हिंसा/भाई, आज मुझमें प्रविष्ट हुआ राक्षस/उभारने के लिए तुम्हें/गहरे नपुंसकत्व में से/हर आदमी दास है-प्रकाश का/आओ मेरी ओर आओ ! कर दें मिश्रित मेरे और तुम्हारे हृदय के रक्त को/और बाँट लें आपस में/एक ही तूफान को/मैं तो खोज रहा हूँ तुम्हारे पद-चिह्नों को/एक अश्रु बन कर/जीवन के मैदानों में/मदारी के इशारों पर नाचने वाला भालू नहीं

मैं वह महान् उत्तुंग लहर हूँ/जो नहीं जानती किसी भी अपमान को/जो उठता है सीधी/समुद्र के अन्तस्थल की गहराइयों से/जो जन्मस्थली है विराट आँधियों की/वही है, वही है, इसकी भी जन्मदात्री !

यदि भूकम्प भी आएँ/तो नहीं हिलूँगा रंच मात्र भी/उस स्थान से/जिसे मैं प्यार करता हूँ/प्रकाश कभी हुआ है भयभीत, अंधकार से ? मृत्यु में भी मैं/रहता हूँ झंझावात ही/मैं लेता हूँ आस्वाद जीवन की रुचि का/आदर्शों के लिए स्वाहा होने में ही !

मैं नहा कराऊँगा/अपने हाथों से/इन दुष्टों के सिर पर/औदार्य दया और त्याग से निर्मित किरीट/मैं नहीं ले सकता उस निकृष्ट जीव का रूप/जो आश्रित है इनके दान पर !

अपने अधिकार की मांसपेशियों के बल पर/मैं प्राप्त करूँगा इतिहास में अपना स्थान/और यदि वह नहीं हो सका/तो मैं छोड़कर चला जाऊँगा इस धरती पर/अपनी रक्त धाराओं को जो बहती रहेंगी सदा/पीड़ित करते हुए यहाँ के लोगों की आत्माओं को/मैं आवाहन करूँगा गुरिल्ला का/मानवीय ज्वालाओं में से/और करके जनता पर अपने इन्द्रजाल का प्रयोग परिवर्तित करूँगा उसे/ज्वालामुखियों में/मैं नहीं चला सकता शांति में हल/और/छिड़क नहीं सकता अपने स्वप्न-बीजों को शून्य में/बहुत कठिन है उतनी ऊँचाइयों पर जीना/वहाँ जी सकते है केवल पौराणिक देवता/मेरी कविता तो सिर्फ मानव का बचाव है !

१२

वसंत समझकर भिक्षा माँगोगे/इस देश के द्वार पर/तो झोली में अश्रु मिलेंगे/मुट्ठी भर फूलों के बदले में !

यहाँ आम्र-फल नहीं है हमारा दिवस/जो परोसा जा सके काट कर/तश्तरी में !

यहाँ ढेरों जनता पड़ी है/जो समर्पित कर देती है अपनी गर्दनें/खुद हल को/और ढेर भर हैं-मुनाश्वर और कवीश्वर/जो मर गये हैं दीमकों की तरह/पृष्ठों में दुबक कर/चलती जा रही है फिर भी लोक-यात्रा/यथा-वत् !...

यहाँ पूजे जाते हैं व्यभिचारी देव/और मार डाले जाते हैं चरित्रवान/ बाँट लते हैं हवा को देशों में/और पानी को विभाजित करके जिलों और ताल्लुकों में !

जहाँ राजा स्वयं गिरवी रख रहे है अपने मुकुट/जीने के लिए/वहाँ ये मूर्ख लोग/यह जाने बिना/कि आ गया है उनका अन्त/अपने बक्सों में रख रहे हैं वस्त्र की तरह नाप कर/जमीन को/और थोप दी गयी है बधिरता/गुरिल्ला के कण्ठस्वर पर/जो गर्जना कर रही है दिशाओं में ! बन्धु/खींचकर फेंक दो देवालयों से/उन विग्रहों को/शिल्पित किये गये हैं जो शिलाओं से/और स्थापित करो वहाँ धर्म से शिल्पित विग्रहों को/मैं दे रहा हूँ तुम्हें/दो वसंतों का अवसर/बटोर लो ! जितने मकरन्द बिंदुओं को यथाशक्ति बटोर सकते हो ! बटोर लो/अन्यथा काल/मार डालेगा तुम्हें/एक हिंसक पशु की तरह पीछे पकड़कर ! लो वही है उदयाचल उसे सादर नमन करो !

१३

मैं अपनी जेब में/कोकिल नही लाया हूँ/बम है मेरी मुट्ठियों में/आ बैठे हैं/ मेरी ऊँगलियों को पोरों पर/कुछ नक्षत्र/स्वप्न बन कर/चिड़ियों की तरह/और कुछ बरस रहे हैं मेरी पलकों पर/अप्सराओं में परिवर्तित होकर/घुटनों के बल/तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ ऐ जिन्दगी/कभी मत चढ़ाना मुझे/सुख के सलीब पर !

दे रहा है दस्तक/मेरे दरवाजे पर/मेरे देश का भविष्य/चर रहे हैं मध्याह्न के मैदानों में/भेड़ों की झुण्ड की तरह श्रमिक/छोड़ दिया गया है समानता को/एक पुराकथा बना कर/इस देश के कवियों और शब्दों को/लग गयो है दीमक/यहाँ तक कि सड़ रहे हैं ऋषि भी पुस्तकालयों में पुस्तक बन कर ! छोड़ दिया गया है/विश्व के मानचित्र पर/मेरा देश एक अँगूठे की छाप बना कर !

सूरज को भी हो गया है हैजा/और महाद्वीपों को सन्निपात/समुद्रों को राजयक्ष्मा/अब हवा नहीं/मेरे फेफड़ों में गर्जना करती हैं आँधियाँ/मैं आँखें और पाँव/भर कर लाया हूँ टोकरियों में/बेचने के लिए/इन्हें

खरीद लो ! ओ मेरे देश के अन्धो और लूलो ! हटाओ जनता के वक्ष पर प्रतिष्ठापित/इन शिलाखण्डों को/झोंक दो इन पुरातन देवताओं को/अँगड़ाइयाँ लेती इन ज्वालाओं के मुख में/...

कभी मैं खेतों पर सरसराती हवा था/किन्तु अब तुम्हारे लिए/परिवर्तित हो गया हूँ/जंगलों में गरजते तूफान में/अब कोई भी बाँध नहीं सकता मुझे/पशु की तरह खूँटे से/तोड़ नहीं सकता संसार मुझे/बुझा नहीं सकते संवत्सर/मैं फेंक रहा हूँ अपने शब्दों को/चारों ओर/ताकि मेरे देश की धरती से तलवारें उगें/मैं वह अग्नि हूँ-जो लहराता हूँ ज्वालाओं को/चाबुक की तरह···!

मेरी जेब में कोकिल नहीं है !

१४

एक महान् कवि/एक महान् ऋषि/या एक महान् क्रांति का शिल्पी/कोई भी हो/एक जैसे हैं सब/रुपये की नजर में/एक ऐतिहासिक किस्म का कचरा/जो उड़ा जा रहा है हवा में !

एक दिन वह मर गया/किन्तु मेरे गीत में तो एक नक्षत्र भी नहीं गिरा/और भूगोल ने नहीं खोयी एक भी मुसकान/नहीं मुरझाया एक भी फूल का चेहरा/उन्हें भलीभाँति ज्ञात है कि वक्त ने पलटे हैं अपने पृष्ठ/

आँगन में कुत्ता भौंक रहा है मजबूरन/और दीपक के समक्ष बैठा बालक/इसलिए पाठ कर रहा है जोर से/कि सुने उसे पिता/और रात के अँधियारे से भयभीत/मुसाफिर/गाता जा रहा है जोर-जोर से !

किसी ने ऐंठी है वायलिन को जाँघ/तभी तो वह पीड़ा से कराह उठी होगी/...

गीत/जो मैं गा रहा हूँ/वह डूब गया किस शिशु के कान में/मैं नहीं जानता किन्तु भूखे पेट पर सोये शिशु के/कण्ठस्वर में/अट्टहास कर रहे हैं/महानगरों के गर्वोन्मत्त भवन ! एक महान् सभ्यता सिर झुकाकर खड़ी है/उसके सदन में ! वह निष्कपट शिशु/जो स्वर्ग को बाँधकर लाया था मुट्ठी में/सो रहा है एक निःशब्द अश्रु बनकर !

ऐ गुलाब के कुंज/अगर तुम्हें शर्म है तो मत गाओ ! तुम्हारे कंठ में जितनी बुलबुलें हैं उन्हें वमन करो ! और कहो मटकों से/कि वे जगाएँ पनघटों को/और भर कर लाएँ उस निश्चल जल के स्वप्नों को/जिसमें मिश्रित है उषा !

यह लो ! मैं आ रहा हूँ लेकर/पूरब की कुंजी का गुच्छा !

मैं एक लाल मुर्ग हूँ !

१५

यह क्या हो गया है ? जो देश एक वक्त गरजता था काल-मेघ की तरह आज म्याऊँ-म्याऊँ करने लगा है जो देश दबोचे हुए था अपने पंजे में/दुष्टों की गर्दनें/वही आज उन्हीं हाथों से/डाल रहा है जंजीरें/स्वयं अपने ही पाँवों में !

अरे ! जो रक्त-बिन्दु टपके थे कल ही/उन्हें एक क्षण में सोख गयी धरती और बुभुक्षिता होकर फिर से इस देश में/घास खाकर जी रही है स्वतंत्रता !

अगर है हमको एक नये देश के निर्माण की इच्छा/तो कहाँ है वह आदमी/जो बने सके उसकी नींव का पत्थर/उसका बलिष्ठ शरीर/और उसकी सशक्त माँस पेशियाँ तो जकड़ी पड़ी हैं/-कायरता और चरित्रहीनता की जंजीरों में ! वह लौह हस्त जो थामता था कभी हल और बन्दूक/आज पकड़े हुए है राजनीतिक नेताओं के पाँव ! कबन्धों के चरण !!

जो दूध निचोड़ कर डालते थे नन्हें मुखों में/वही हाथ निचोड़ कर रातों की चाँदनी/आज/चरण प्रक्षाल रहा है नेता के ! अरे ! कैसे आएगा वह दिन ! जब कुर्सी पर आसीन इस दन्तवक्त्र का सिर/एक दम आ गिरेगा जमीन पर !!

हम ही बनाते हैं असेम्बलियाँ/खड़ी करते हैं हम ही अकादमियाँ/राष्ट्र की कीर्ति के लिए हम ही/निर्मित करते हैं उन्नत गोपुर/फिर हम बैठाते हैं उसे कुर्सी पर/और मर जाते हैं ईंटों के नीचे दब कर !

उसके सिर के चारों ओर बुनते हैं हम हीं/प्रभामण्डल/और फिर बन

जाते हैं पुजारी/अरे ! इतना तो समझो कि तुम आखिर कर क्या रहे हो ?

ओ कृषको ! बरस रही है राजनीति की बरखा/धोखे में आकर अब बीज मत छिड़काओ ! जो बनजारा क्रांति विचरण कर रही है/विश्व के समस्त भागों में/वह आने वाली है हमारी गलियों में भी !

नन्हें बच्चे भी नींद में/देख रहे हैं बमों के स्वप्न/यदि तुम बुलाते हो वेदान्त की ओर/तो वे भाग रहे हैं/विद्रोह की ओर/नहीं देख रहे हैं चन्द्रमा को/दिखाने पर भी/माता-पिता खोल कर अपनी पोटली/ढूँढ़ रहे हैं दु:खों को ! चेचक की तरह दिखायी दे रहा है/उनकी आँखों में/नक्षत्र-भरा आकाश/

जो कोकिलाएँ बैठने वाली थीं/आम्र-शाखाओं पर/अब गा रही हैं मशीन गनों पर बैठ कर/मुट्ठी कसे मौन प्रतीक्षा कर रहे थे हम/जिस प्रभात-देवता की/जगा रहा है वह सबके हृदयों में/अग्नि-जगत्/द्वीप-द्वीपान्तरों और गाँव-नगरों में/फैल रहा है उसकी प्रतीक्षा का आलोक/बुझा नहीं सकते तुम उसे/भाषाएँ फेंक कर ! छिपा नहीं सकते,देशों से ढाँप कर/ और मिटा नहीं सकते उसे/कुल और जाति-पाँति के द्वारा !!

विश्वास करो/आने ही वाला है वह दिन/गुरिल्ला बन कर/जो चीर डालेगा मनुष्य की पीड़ा को/जंघाओं पर रख कर !

चलो ! मैं दे रहा हूँ आशीष/कि तुम्हारे हाथों में आए क्षमता/अपना स्वर्ग निर्मित करने की/और धारण करे तुम्हारा हृदय/साहस की मांस-पेशियाँ/और उग आए तुम्हारी देह में गुरिल्ला/मस्तिष्क के शिखरों तक !

आगे बढ़ो ! बढ़े चलो !

१६

मानो या न मानो ! इस देश में रात्रि/एक घोंसला है/ज्वालाओं से निर्मित जिसमें सो नहीं सकता कोई/वहाँ सिर्फ चूहे भौंकते हैं-कुत्ते नहीं ! भूल ही गये हैं शेर गर्जना करना/बात कर सकते हों शायद पत्थर ! किन्तु

आदमी भूल गया है पूर्णतः बोलना/भाग गयी है बहुत पहले ही उसके मुँह से कूद कर जिह्वा !

इस देश में मात्र पात्रधारी हैं/पात्र नहीं/स्वप्नों में बसा है जो आदमी/दंत-चिकित्सक-सा यह देश/खींच रहा है उसे/दाँत की तरह/और भीड़ों में जी रहे हैं मुर्दे/बाजारों में...

क्या हाथियों का आकार धारण कर सकता है इतिहास चूहों के देश में/क्या अनन्नास की तरह रह सकती है सभ्यता बैंगनों के राष्ट्र में/देखो भाई, कैसे चली आ रही है यह/अनाथ शिशुओं की परम्परा/देश की धूप का आँचल पकड़े !

रुपये को मसल कर सुँघाने मात्र से यदि तुम मूर्छित हो जाओ/तो क्या यह कोई अच्छी बात है ? तुम्हें तो बनना चाहिये वह गरुड़/जो जन्मा हो/नये युग की जंघा की माँस-पेशियों से/और तुम्हें धारने चाहिए वे लौह-पंख/जो टकरा सकें झंझावातों से !

यदि तुम्हारी गर्दन किसी के समक्ष झुके/और तुम्हारी टाँगे दो बंदूकों की तरह/तनी नहीं रह सकें/तो तुम निरर्थक हो मेरी लड़ाई के लिए ! अगर तुम मुझसे कहो कि प्यासा हूँ/तो जानते हो, मैं क्या दूँगा तुम्हें ? एक लोटा रक्त !

इन सब धातुओं को ध्यान से देख रहा हूँ मैं/कि किसमें योग्यता है तुम्हारा अवयव बनने की ! मित्र/चलो, नक्षत्रों में/इन कीचड़ भरे मार्गों को छोड़ कर !

यह धरती/जिस पर तुम चल रहे हो/वह एक बुझ गया नक्षत्र है/तुम्हें पता नहीं कि कितने ऐसे नक्षत्र/बुझ चुकने वाले हैं तुम्हारे पाँवों के नीचे !

मुझे दत्तक दे दो अपना दुःख/मैं ले लूँगा उसे/मगर, याद रखो ! वह आत्मा जिसने भूगोल पर चरण रखे/एक महान् यात्रा के लिए/वह चलती है-मरण के गलबहियाँ डाले !

हथियार की शक्ति/उस भुजा में है/जो धारण करती है उसे/अधिकार का सारांश उस इच्छा में है/जो भोगना चाहती है उसे/जब यह वाक्य दिगन्तों पर झलकता है/तभी तुम्हारा प्रभात-गगन/फट पड़ता है/एक लाल अनार की तरह ! और धरती करती है स्नान-ऊष्ण रक्त से !

१७

सरकारी सूरज घोषणा करता है-चलो, साढ़े दस बज गये/चलो दफ्तरों को/और निकलते हैं कांचनदास/एकाएक/पेंट और बुशकोट पहन कर देखो, रास्तों में देखो/कैसे चल रहा है यह जुलूस/कांचनदासों का/झंडा/जिसे वे थामे हुए हैं हाथों में/वह जिह्वा नहीं है/उनके हृदय के आदर्शों की/पैसे जो डाले गये हैं उनकी जेबों में/परिवर्तित होकर बड़े-बड़े अक्षरों में/कर रहे हैं उनके ओठों पर प्रहार/जा रहे हैं ये लार्ड जुलूसों में/जिन्होंने समर्पित कर दिया है अपनी आत्मा को/उपहार की तरह/किसी के चरणों में !

अरे, तुम चल कैसे रहे हो ? गर्दन पर सिर को लटकाये हुए/आकारों के साथ/यदि तुम अपने अफसर की अदृश्य मूँछों को देखो तो बस है !

यदि तुम उन मूँछों के ऊपर/अग्नि की तरह जलती आँखों तक भर लो तो और भी बस है ! पेशाब से भीग जाएँगे/अनजाने ही/तुम्हारे सम्पूर्ण परिवार के पाँव/ओ हो हो ! एक जमाने में यह देश/जो कहता था कि शरीर एक कारागार है/वही देश/आज तुम्हारे हाथों को पकड़ कर कह रहा है-कि यह देश ही वोटों से निर्मित एक स्वर्ग है !

बाबा ! तुम लोग सिखाते हो देवताओं को भी/मनुष्यों का अभिनय/थूऽऽ तुम्हारे जीवन से ही नहीं-तुम्हारे मरण तक से मुझे बेहद नफरत है ! क्योंकि दोनों ही दशाओं में/कुलबुला रहे हैं तुम्हारी देह पर असंख्य कीट !

मैंने इस देश के नगरों से पूछा—गाँवों से पूछा कि किसके लिए जन्मे हो तुम ? तो उन्होंने जवाब दिया सिर्फ तुम्हारे लिए ! नदियों से पूछा-कि किसके लिए बह रही हो ? उत्तर मिला तुम्हारे लिए/वायु से पूछा-जल से प्रभातों से जंगलों से आकाशों से-सबसे पूछा—सारा देश एक कंठ से गर्जना कर उठा-तुम्हारे लिए, तुम्हारे लिए, तुम्हारे लिए !

किन्तु समझ में नहीं आता/कि कैसे वह तुम्हारा स्वामी बन गया/तुम्हारे जीवन का शासनकर्त्ता/मैंने पुराणों में ढूँढ़ा/इतिहासों को पलटा/मैंने तलाशा-सारे देवालयों में/दीवटें थामे हुए/मगर वह रहस्य/जिसके बल पर वह तुम्हारे कंधों पर चढ़ा/वह तो किसी मंत्र में मुझे नहीं मिला ! तुमरी जंघा का शिशु है वह/तुम्हारे रोम से जन्मा है वह/तुम्हारे पसीने

की संतान है वह/उसे कैसे मिला यह महत्व ? उसका सृजन करके थमा कर उसके हाथ में कलम/बिठाया तुमने ही उसे कुर्सी पर/तो तुम्हारी गर्दन को ही बना रहा है वह/बन्दूक का निशाना/तुम्हारी पीठ पर सवारी करने के लिए/कर रहा है तुम्हें एक जंतु में परिवर्तित/जो लिखित है शिशुओं को/कि भूख से मरो ! उस हाथ में आँख है क्या आँसू टपकाने के लिए/मात्र एक हस्ताक्षर में ज्वलंत आत्माओं को बनाकर मुर्दा वृक्षों में टाँगना चाहता है वह हाथ !

भाई, शर्म सभ्यता का चिह्न है/तुम्हारी स्वतंत्रता के लिए/बह गया है कितना रक्त ! यह जानो ! यदि वह रक्त/छिड़क नहीं सका तुम्हारे शरीर-क्षेत्र में साहस/यदि वह नहीं उगा सका तुम्हारे हृदय में/आत्मगौरव की फसल/और यदि तुम दास ही बने रहने का/ले चुके हो निर्णय/तो तुम कितने विश्वासघाती बन गये हो उस पवित्र रक्त के !

अरे ! तुम उसके हाथ में जो निवाला है/उसे ही नहीं/बल्कि उसकी छाती में जो निवाला है मांसल/उसको भी निगल जाओ अपने भयानक मुख में/तुम्हारे शरीर पर जो चिपके हैं-धो डालो उन गंदे दिनों को !

१८

वे अगर काले भी हैं तो क्या ? वे स्वर्ण किरणों में बनने वाले/वे इस देश के लवण हैं/जो सूरज/सिर के ऊपर है/वही उनका उज्ज्वल मुकुट ! क्या तुम जानते हो ? उनकी माँस-पेशियाँ हैं/जब वे मांस-पेशियाँ नींद से उठ-कर/भागती हैं बाढ़ बन कर/तब तुम उन्हें देखो/तभी जानोगे तुम/उनकी शक्ति/तुम उन्हें केवल/मात्र मुट्ठी भर रेत समझते होगे/मगर तुम्हें ज्ञात नहीं/कि मैं हूँ उन लोगों में/बनाता हूँ/मानवीय मिट्टी से/देवताओं के चेहरे/और तराशता हूँ कष्टों की छेनी से/आदमी को !

मैं लक्ष्य को तलाश रहा हूँ/अपने धनुष को ताने हुए/जब तक मैं बाण छोड़ता हूँ/ज्ञात नहीं होता तुम्हें/तब तक मेरा उद्देश्य/खबरदार ! कविता सिर्फ शब्दों को बल देने वाली विद्या नहीं है ! तुम्हारे हाथों में पद्य/एक भजन का वाद्य है/किन्तु मेरे हाथों में पद्य/हुङ्कार है गुरिल्ला की !

मेरी एक तपस्या/तुम्हारी एक वृत्ति/आओ मेरी क्रोधाग्नि के समक्ष तभी तुम जानोगे !

जो मांसल-शरीर/लुहार/मारता है हथौड़े से, वह दे रहा है जन्म/एक-एक चोट से/करोड़ों लौह-देवताओं को/बन्दूकें और तोपें/तलवारें और भाले/उछल रहे हैं/वे अग्निजगतों में कूदने वाली सेनाओं में से/कवियों और नेताओं का भेस धारण करके/भस्मीभूत कर रहे हैं/विचरण करने वाले भाँडों को !

विद्रोह-ध्वज में से कौन निचोड़ सकता है धूप ? जो बन्दूक/निशाना बनाये हुए है जनता को/उसके विरुद्ध/जनता ही नहीं/विद्रोह करेगी बन्दूकों की रीढ़ की हड्डी की नली भी/और वक्त के घोड़ों को दबाने वाली उँगलियाँ भी ! करेंगी बगावत ! मेरी माँस-पेशियाँ गा रही हैं क्रान्ति के गीत ! मेरे हाथ बढ़ रहे हैं/शत्रु के कंठों को/भीगे अँगोछे की तरह निचोड़ने के लिए !

एक दिन मैं और मक्खियाँ मिल कर/भोजन कर रहे थे/तब मालूम हुआ कि मक्खी मुझसे भी बहुत महान् जीव है/क्योंकि वह बैठ सकती है अकबर पर भी/और सम्राट् अशोक पर भी/और वे ही क्या ? वह उन लोगों के दादा/सरकारी अफसरों पर भी बैठती है/मुझमें तो/उन लोगों के दरवाजों पर कदम रखने की भी योग्यता नहीं है !

इसलिए मैं समझता हूँ/जो भोजन मैंने खाया उसके साथ/वह था मेरे लिए बहुत सम्मान जनक/मैं तो एक ऐसा सामान्य व्यक्ति हूँ/हो रही हैं जिसके चेहरे पर सुशोभित/जिन्दगी के हलकी लकीरें !

किन्तु मैं/एक महान वीर पुरुष भी हूँ/जो बसा हुआ है/एक विशाल गर्दो गुबार के ढेर जैसे नगर में/जहां दुर्गंधकीट/कर रहे हैं राज-संचालन/होकर सिंहासन पर आसीन/वहाँ साँस लेते हुए कविताओं को तराशने वाला मैं एक कार्मिक हूँ/सदैव व्यस्त और अस्तव्यस्त भी !

क्रंदन सुनते ही मैं/तराशी जाती हुई कविता को छिटककर/भाग जाता हूँ उसकी तलाश में दर्शन देती है फटी हुई आशाओं में से/मनुष्य की शोक-नग्नता/सुनायी देती है सड़कों पर/बेड़ियों की खनखनाहट !

मुझे कोई संशय नहीं है/अपनी आत्मा के बारे में/क्योंकि यदि मैं मर जाऊँ/तो उसकी कोई हानि नहीं/किन्तु समस्या यही है/कि वह शरीर/

जिसने जीवन भर दिया मेरा साथ/और बाँट लिया मेरा सुख-दु:ख/उसे खा जाएँगे राजनीतिक्रमी ! यही है मेरा डर ! !

रक्त वितरित कर लेता हूँ मैं मच्छरों के साथ/और भोजन करता हूँ मक्खियों के संग/मैं एक चक्रवर्ती बलि हूँ-इस राजनीतिक युग का !

२०

इन रास्तों में आत्मज्ञान नहीं है/तभी तो ये ढो रहे हैं/सब किस्म के प्राणियों को/और नदियाँ इतनी अचेतन हैं, कि उन्हें पता ही नहीं/कि क्या-क्या बह रहा है उनके शरीर पर/और अखबार/ढोये जा रहे हैं/मुर्दा मछलियों से/साइकिलों की पिछली सीट पर/और शिथिल राजमहलों में/कंठ सूखे फव्वारों की तरह/पड़ी है जनता !

ऐ मेरे देश ! मैं जानता हूँ तुम्हारी पीड़ा/यही है मेरी एक मात्र आकांक्षा/कि अपने सम्पूर्ण जीवन को/परिवर्तित करके एक आँसू की बूँद में/रख दूँ तुम्हारी हथेली पर !

एक रास्ता जो बनाते हैं तुम पर/और एक रौशनी/जो लगाते हैं तुम्हारे रास्ते पर/ये चीजें एक कण के बराबर भी नहीं हैं, तुम्हारे प्रजा-समुद्र की भूख के लिए/यहाँ तक कि तुम्हारे सारे खेत/खुले हृदय से दे दें अपनी सारी की सारी फसलें/तो भी खा रही है इतनी भूख तुम्हें चीर कर/कि वह होगी नहीं पर्याप्त !

जहाँ झरने छलाँगें मारते हैं/खरगोशों की भाँति/और जहाँ उछलते रहते हैं बैल/बिना पतवार की लहरों की तरह/वहाँ अकाल क्या ? मात्र इन लोगों द्वारा निर्मित/एक तमाशा !

ओ मेरे देश ! यह समुद्र है एक निद्रा-मग्न सिंह/अगर वह उठा/तो सब कुछ समाप्त हो जाएगा/आधे पल में/और एक सुबह नहीं मिलेगी हैदराबाद को !

बंगाल की खाड़ी तुम्हारी गोद में एक शिशु है/और मेरा हृदय एक कविता-खंड/हाथियों की आँखें निकाल कर/चिपकाता हूँ चूहों को/और चूहों की पूँछें काट कर/लगाता हूँ हाथियों को/और तराशता हूँ व्याघ्र

की आँखें/जनता की आँखों में/लगाता हूँ उसके मस्तिष्क को/सिंहों के दाँत !

देख-लेना ! चारमीनार के पास/कबूतरों के झुण्ड नहीं पत्थर गिरेंगे !

२१

एक भी मेघ में नहीं है/इस भयंकर बंजर भूमि पर बरसने का साहस/आकाश जो उगलता है तूफानों को/मेघ अँगोछे की तरह/पोंछ रहे हैं उसे/अन्ततः क्या है आकांक्षा इन बेचारे खेतों की ? मात्र इतनी/कि फसलें उगें/और लोगों की भूख मिटे !

राजमार्गों की कमर/टूट चुकी है इन दुष्ट राजाओं को ढोते-ढोते/आखिर कब तक गाती रहेगी कोकिला/एक दिन उसे भी बसाना होगा घर/पैदा करने होंगे बच्चे/और तब जानना होगा यह भी/कि क्या बीमारी है गाना !

क्या तुम जानते हो कि क्या है तुम्हारा रोग ? जीवन/उसकी दवा क्या है ? एक निवाला/क्या है उस रोग का लक्षण ? एक ही—जब लगती है तुम्हें भूख/तब ही महसूस करते हो/कि तुम आदमी हो/तुम्हारी भूख के बीच में/जो जो आते हैं बाधाओं की तरह/उन्हें खा जाओ बैंगन की तरह/बस, उठ भर जाएँ तुम्हारे कदम/ये सारी बेड़ियाँ तैयार हैं टूटने को ! सिर्फ तुम खड़े भर हो जाओ ! तो गिरने को प्रस्तुत हैं/ये जेल की दीवारें ! स्वतन्त्रता खड़ी है तुम्हारे स्वागतार्थ/फैलाकर अपनी बाँहें !

तुम्हें मैं बना दूँगा इतना बड़ा आदमी/कि तुम्हारी छाया मात्र से हो जाएंगे धराशायी/तुम्हारे प्रतिद्वन्द्वी/अगर तुम गरजो/तो समुद्र भी सो जाएगा डर कर/एक शिशु की तरह/…

बन्धु ! आज की सुबह/मेरी आत्मा का सारांश है/देखना ! मैं क्या करने वाला हूँ इस धरती के लिए ! मैं तुम्हें झपट लूँगा/और ले उड़ूँगा अपने पंखों पर/दाढ़ी पकड़ कर गरजते हुए मेघों की/मैं वमन कराऊँगा वर्षा को !…

२२

भाई ! हम कर सकते हैं बन्दूकों का मुकाबला/किन्तु नहीं कर सकते तानाशाह-प्रश्नों का सामना/मनुष्य के हाथ से सर्जित सभ्यता के लिए/ कैसे उत्तरदायी हो सकता है/देवालय का भगवान ? मानवता के साथ बेईमानी/जिसे तुम कहते हो सभ्यता/कौन है जवाबदेह उसके लिए ?

अधर्म का पुरोहित नहीं है कालिदास/और वाल्मीकि आदर नहीं देता अधर्म को/कहाँ है इतनी फुर्सत/अधर्म से पीड़ित आदमी के पास/कि वह साधना करे/अष्टाध्यायी की !

जब भूख की ज्वालाएँ झुलसा रही हैं/मासूम बच्चों को/तब चुपचाप बैठे देखते रहना ही क्या सभ्यता है ? मनुष्यों को बरता जाते देख कर चौपायों की तरह/मौन बने रहना ही क्या सभ्यता है ? जब अधर्म/ हजारों चेहरों से तांडव कर रहा है चारों ओर/वानगॉग का आनन्द उठाना ही संस्कृति नहीं/वह नितान्त/एक झूठ है ! वह एक पक्की क्रूरता है/वह गन्दी पीप है/जो बह रही है हृदय में से !

स्वच्छ सभ्यता की रक्त नलिकाओं में/बहती रहती है स्वच्छ हिंसा/ /सभ्यता के रक्त में प्रवेश नहीं करता अधर्म/लोकप्रवंचना में परिवर्तित किये बिना/कायरता और नपुंसकत्व/बन नहीं सकते सभ्यता की देह के अंग/फिर भी यदि कोई उसे सभ्यता कह कर/पुकारता है तो मैं थूकूँगा उसके मुँह पर !

बन्धु ! किसी भी किस्म के अंधेपन को/बचाओ मत/रोशनी की क्रूरता से !

२३

केवल वही जान सकता है/कि कितनी अग्नि है इंधन में/जो लौटा है अभी-अभी अपने शिशु को/अर्पित करके ज्वालाओं में/और वही जनता है/देह होती है कैसे विलीन/वेदान्तियों के पंचभूतों में !

अगर भावी पीढ़ी नहीं आती है तो क्या होगा ? यह तभी ज्ञात होगा/ जब आएगा हाथ में छड़ी के सहारे का दिन/भाई, भगवान् ने खो दिया है आदमी को !

देखो; मैं घोषणा कर रहा हूँ/देश के नाम से/जाति और राष्ट्र के नाम से/देश-देश में जो मानवता-द्रोही/झोंक रहे हैं/हमारे युवकों को/भयावनी युद्ध-ज्वालाओं में/उससे भी भयावनी जीवन-दावाग्नि की लपटों में/उनके निकट आ पहुँचा है मौत की सजा का दिन !

यह मत समझो कि वह सिर्फ एक छड़ी है/वही एक दिन/समेट कर अपनी आत्मा को कंठ में/कहेगा समस्त मानव जाति से/डरो मत ! तुम्हारी संतान ही रक्षक हैं/तुम्हारे स्वप्नों की/वही छड़ी, में से फूट पड़ेगा एक दिन/सिंह की तरह महान् गुरिल्ला !

वह एक ऐसा वीर है/पालतू बनाया है जिसने समुद्रों को/और वह जिन्दगी/कुत्ते की तरह चक्कर कटवाने वाला स्वामी है/वह है सिंहों पर सवारी करने वाला/और सखा है आँधियों का/वही है प्रवक्ता/वही है द्रष्टा ! वह आने ही वाला है/चाबुक थामे/हवाओं को हाँकता हुआ/और बिजलियों को लहराता हुआ/मेघों को फेंकता हुआ/भूमि और आकाशों को/अपने सुनिश्चित वज्र-पादों से नापते हुए/और/उग्र किरणों से सड़े हुए पत्तों को जलाता हुआ !

कोई उसे मार नहीं सकता/उसकी मृत्यु/जिस पर खुश होता है शत्रु/वह जीत नहीं है शत्रु की/वह धारण करता है/असंख्य वीरों का रूप/उसका एक एक रक्त-बिन्दु/सोख रही है जिसे धरा/फेंकेगी बाहर/एक-एक वीर-वंश वृक्ष को/लक्ष-लक्ष वृक्षों की अनन्त शाखा-प्रशाखाओं से/बम/डाइनामाइट/बंदूकें/तोपें/तलवारें/भाले/और गदाएँ धारण करके/कूद पड़ेंगे करोड़ों गुरिल्ला/और इन विश्वासघातियों की अमानवीय संस्थाओं को/कर देंगे असंख्य खण्डों में विदीर्ण/अरे वीर ! तुम पुकारोगे तो/बस इतना भर कि यही हूँ, लो यही हूँ-फूट पड़ेगी प्रतिध्वनियाँ सभी दिशाओं से !

२४

ओ गुरिल्ला उठो ! उठो ओ गुरिल्ला ! आदमी की सुप्त क्रिया शक्ति ! ओ महात्मा ! ओ गुरिल्ला उठो ! सूर्य-चन्द्रों ने देखा जिसे पहले-पहल/ओ पितामह ! उठो !

असहाय मानवता कर रही है क्रंदन/गिर गये हैं वे भवन/जिन्हे किया था तुमने निर्मित/उठो ! शिथिल हो गया है वह आदमी/गढ़ा था जिसे तुमने/उठो, उठो ओ गुरिल्ला ! यह तुम्हारे सोने की बेला नहीं है ! मै बुन रहा हूँ इन गीतों को/खड़ा हुआ तुम्हारे विशाल द्वार पर/गा रहा हूँ गीतों को/ चीख रहा हूँ इन गीतों को/केवल तुम्हें उठाने के लिए/हुआ है जन्म गीतों का/ये सब गीत तुम्हारे चरणों में समर्पित करने के लिए हैं/ इस युग में/जो गीत तुम्हरी जागृति के लिए नहीं रचा गया/वह एक महान् अपराध है/तुम्हारी सुषुप्ति के लिए लिखी गयी लोरी/एक महान् पाप है/मेरी भक्ति/सिर्फ तुम्हारे लिए है ओ कर्मशील !

मेरे गीत सुनायी नहीं पड़ रहे हैं क्या ? कर रहा हूँ मैं झंकृत/हृदय के तारों को/उँगलियों को परिवर्तित करके आँधियो में/उठो, ओ मेरी भुजाओं में सो रहे गुरिल्ला ! उठो/ओ मेरे परशु में निद्रालीन गुरिल्ला ! जिसे धारण किये हुए हैं मेरी भुजाएँ/दुर्जनों के सिरों को खण्ड-खण्ड करने वाले/ओ गुरिल्ला ! प्रलय झंझावातों को फूंक से उड़ा देने वाले/ ओ गुरिल्ला ! उठो ! तुम सोये हो तो देखो/कैसे सो गये हैं ये खेत/और कितनी चुपचाप खड़ी हैं/कारखानों की ये चिमनियाँ/उठो/ओ गुरिल्ला/ ओ कर्मवीर/तुम्हारी योग-समाधि में से बाहर आओ/आदमी/तुमने बनाया जिसे/वह केवल ज्ञानयोगी बनकर कमजोर और निर्वीर्य हो गया है/आओ, मानवता के उद्धार के लिए/सहस्त्र बाहुओं/सहस्त्र आयुधों के साथ !

ओ महोग्रमूर्ति ! तुम पाषाण-युग के अण्डे को फोड़कर/बाहर आये/प्रलय-प्रभंजन की तरह/मानव-जाति के क्रंदनों का आर्केस्ट्रा क्या सुनायी नहीं पड़ रहा है तुम्हें ? तुम्हारी तन्द्रा टूट नहीं रही है क्या ? तुम हमारी जाति के प्रथम प्रभात हो !

जिस दिन तुम भूख से व्याकुल/पकड़ने गये उदयारुणबिंब को/जन्मस्थली बन गया है/हमारे मस्तिष्क की/उस दिन का हाथ/पहले अपनी आँखों में क्रांति का दर्शन करके/दिखाया हमारी आँखों को आकाश-मंडल/जहाँ बसते हैं/ज्योतियों के समस्त परिवार/तुमने खड़े रह कर/हमें सिखायी खड़े रहने की विद्या/बस कर हमारे बाहु-दण्डों में/खेतों में फसलें/और भवन/उद्यान आदि/दिये समस्त दान और भूमण्डल पर फहरायी क्रिया-शक्ति को पताकाएँ/अपने सहस्त्र बाहुओं से निर्मित किया/तुमने गाँवों/ नगरों, साम्राज्यों और साहित्यों को/और फहराया मनीषा का ध्वज/

हमारे मस्तिष्क-मंडलों में/ओ मानवता के प्रतीक/धर्म-ध्वज/अधर्म का प्रतिकार है तुम्हारा कठोर कुठार/वह परशु आज किस कोने में सो रहा है ?

ओ पितामह/दुर्जनता और कृत्रिमता के शिकार हो गये/देवताओं जैसे/बच्चों का क्रंदन क्या तुम्हें सुनायी नहीं पड़ रहा ? बाल-सूर्य और शिशु-चन्द्रमा/और किशोर नक्षत्रों के संग/तुमने की बाल-क्रीडाएँ/ओ तेजस्वी उठो ! अब तो जागो ! !

तुम धरती के यौवन से जन्मे हो ! तुम्हारी आयु/गरजती हुई वायु है/प्रलय सागरों की खुरदुरी मांसपेशियाँ/बन गयी हैं तुम्हारी मांसपेशियाँ/अग्निहोत्र परिवर्तित हो गया है तुम्हारे नेत्रों में/और आकाश खड़ा है/तुम्हारा कण्ठ बन कर/ओ पितामह ! वह कौन है जो नत नहीं होता तुम्हारे समक्ष ! तुमने 'दिनोसेरस' नामक पुरातन 'क्रूर' जंतु से लड़कर/दुर्जनता की पशुता को मारने का/हमें दिया उपदेश !

हम में प्रविष्ट हो जाओ ! ओ गुरिल्ला ! हमारी भुजाओं को वास्तविकता से जोड़ो/और हमें पवित्र हिंसा की सीमाओं में ले चलो/तुम्हारे रोम-रोम से जन्म लें/कोटि-कोटि कर्मवीर और त्यागवीर/और प्राण-प्रतिष्ठा हो पतनोन्मुख धरित्री की !

तुम्हारे क्रोध को/धूपित कर रहे हैं अपने हृदयों से/और हवन कर रहे हैं/अपनी आवाज से/तुम्हारे हृदय में/उद्‌भूत हो जाओ ! ओ गुरिल्ला ! होमाग्नि ज्वालाओं में से/पूरा युग तुम्हारी प्रतीक्षा में क्षीण होकर/आधा रह गया है/अवतरित हो जाओ ओ महामानव/अग्नि बुझी जा रही है ! ले जाओ ! अपने जंगलो को/अपने बच्चों को/वहाँ/जहाँ देवता-आवाहन हुई गणचारियों से फूल भी क्रोधित होकर करते हैं झगड़ा बसंत से/जहाँ अरण्य/वीर माताओं की तरह/केशों को बिखराये हुए/करते रहते हैं/विद्युल्लताओं को कंठों में अलंकृत करके उग्र तांडव/और जहाँ आकाश/थूकता है धोखाधड़ी पर/परन्तु बरखा नहीं बरसाता/जहाँ कुठारों की कर्ण-मधुर प्रतिध्वनियाँ/गूंजती रहती हैं दिशाओं में/जहाँ बकवासी नेताओं और पाखण्डी कवियों को/फेंक देते हैं खींच कर खौलते तेल के कड़ाहों में/जहाँ सिर्फ तूफान हैं/मलय-मारुत नहीं/जहाँ हैं सिर्फ महान् सागर/कमलताल नहीं/उस महान् जगत् में ले चलो हमें, ओ महापुरुष ! दिखाओ, तुम्हारा दिव्य, मंगल, विग्रह एक बार/

मनुष्य एक नि:सहाय बालक बन कर/रोदन कर रहा है/दर्शन दो ! उत्तुंग गोपुरों को कंधों पर उठाये हुए/और आधुनिक राक्षसों के मुण्डों को/पायलों की भाँति/पाँवों में धारण किये हुए/सहस्र बाहुओं में परशु, शूल, शतघ्नी आदि/असंख्यों आयुधों को धारे:हुए/अपने बाँयें पाँव को किंचित् प्रत्यालीढ़ भंगिमा में/और दाँयें पाँव को/नायकासुर/की छाती पर रखे हुए/दाँयें हाथ की मुट्ठी में कठोर परशु उठाये/और बाँयीं मुट्ठी में अफसर के छिन्न मस्तक को लटकाये हुए/दर्शन दो ! दर्शन दो ! ओ गुरिल्ला ! !

तुम्हारी बाहर लटकती रक्त-सनी जिह्वा/बना दे सब पापाचारियों को साहस-हीन/ओ पितामह ! उस दिव्य, मंगल मूर्ति का साक्षात्कार कराओ ! अग्नि गोलकों, जैसी अपनी आँखें/फेंको इस सड़े हुए देश पर/ओ गुरिल्ला ! ओ गुरिल्ला ! ओ गुरिल्ला ! !

भरत-वाक्य

नयी पीढ़ी के बच्चो ! यौवन की पताकाओ ! आओ !! निर्मित करेंगे काल के कूलों पर घरौंदे/आओ ! सब एक साथ मिल कर/नाचें-कूदें, और शोर मचाएँ/थक कर तटों में विलीन हो जाने तक !

आओ चलें ! तोतों की पाठशाला/और सीखें मीठी-सी भाषा/मयूर कन्याओं को सिखा देंगे हम ही नृत्य/बरसेंगे बरखा बनकर/मेघों में परिवर्तित हो कर/और खेतों को सरसाएँगे/गगनों को देंगे/इन्द्रधनुषों का उपहार !

हिम-बिन्दुओं के रंगों में डुबो कर पात्र/करेंगे स्नान/चुरा लेंगे पहाड़ी झरनों के कंठों का संगीत/पहन लेंगे पक्षियों को पाँव में पायल की भाँति/और करेंगे पुष्प-कन्याओं के संग उछल-कूद/मचाएँगे धमाचौकड़ी/बटोरेंगे बागों में पराग/और लगाएँगे/सुहागिन हवा के पाँवों में उसकी महावर ! झील के चाँद को घिस कर/लेपेंगे शरीर पर/और धरती की समस्त जनता को बाँटेंगे/वसन्त-बहार ! !

प्रेम-पत्र

पत्र खोला, पृष्ठों से चाँदनी बिखर गयी, और वाक्य मैना, चकोर और तोते बन कर उड़ गये। फिर मैं और धवलिमा बच गये पृष्ठों पर।

आज मेरा हृदय एक नयी मन:स्थिति का अतिथि बन गया। नक्षत्रों के गाँवों से चाँदनी के झुण्डों को हाँकता हुआ आ गया है चन्द्रमा। रात मेरी पीड़ाओं को लय के अनुरूप गुनगुनाने लगी। मैं जब चुपके से बगीचे में प्रविष्ट हुआ तो पाया कि मौसम्बियाँ डालों पर लेट कर सो रही थीं, मासूम बच्चों की तरह, और मुझे लगा कि वृक्ष मेरे कान में फुसफुसा रहा था—"अपनी छाया से ही टकरा कर तुम गिरे जा रहे हो! जो फूल नहर में गिरे वे क्या बहे बिना रहेंगे? अपने चेहरे को मानवीय उद्विग्नता का रूपकालंकार मत बनाओ! देवताओं जैसे तुम्हारे शब्द पुनीत करेंगे लोकों को।"

मैंने जीवन में डूब कर भरपूर क्रीड़ा की है। अनेक गहराइयों में गोते लगाये हैं। अनेक उँचाइयों पर चढ़ा हूँ। किसी एक जगह से नहीं बँधा। किसी भी स्थान पर नहीं पहुँचा। मैं वह साहसिक हूँ जिसने समुद्रों की यात्राएँ कीं। कई स्वप्नों को कविता-नौकाओं पर चढ़ा कर तुम्हारे तटों तक पहुँचाया। इन हाथों, लौह-दंडों ने कई पर्वतों को उखाड़ दिया। द्वीपों और उपमहाद्वीपों को बाँध कर लाया। द्वीपकल्पों को कुत्तों की तरह तुम्हारे सामने ला कर घुमाया।

अब मैंने अपने हृदय को आकाश के मैदानों में फेंक कर, एक ध्वज की भाँति प्रतिष्ठित कर दिया। उधर देखो! कपड़े की वह रंगीन चिन्दी जो हवाओं में उड़ रही है, इस युग की जिह्वा है। आओ, केरल की वृक्षावलियों में से नेत्रों के जुलूस लेकर दौड़ते मार्गों से। आओ, ब्रजभूमि की करील की झाड़ियों में से सिर उझका कर झाँकते नगरों से और

पीठ के बल लेटे राजस्थान के रेगिस्तानों से। आओ, मध्यभारत के घने जंगलों से—लाखों के जुलूस लेकर आओ !

तुम लोग नहीं जानते, मैं हमेशा आगे रहता हूँ आदमी से। पकड़ लेता हूँ अपनी अदृश्य किरणों से आगे की वस्तुओं को। मेरे लिए ग्रहण राहु नहीं है, लेकिन असूया विष-बाहु। मेरे शत्रु मेरे समय में श्वास लेने वाले नहीं हैं—लेकिन मेरा काल, मेरा देश, मेरी भाषा और इनको नहीं झुकने देने वाली मेरी अन्तरज्वाला। हताश मत हो ऐ शेषेन ! आज के उदय को कल का उदय भूल जाएगा। अपने हृदय को धड़कता रहने दो ! किन्हीं शाखाओं को चीर कर फूल निकलने ही वाले हैं।

आज की सुबह मैं एक विलास-नौका बन कर तैर रहा हूँ अपने शरीर में। तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ अपने को एक वाद्य में परिवर्तित करके, वाक्यों को तंत्री बना कर। मैं बन जा रहा हूँ स्वर। अब मुझमें से प्राणों की मूर्च्छनाओं को खींच कर पीओ। मुझे एक घाट तक पहुँचने दो। बस, मैं अपने समस्त स्वर्गों को यहीं उँड़ेल दूँगा। जो अग्नि-पर्वत के शिखर-सा भग्न हुआ ऐ शेषेन ! जिसकी कीर्तिपताका में एक अंग बन गयी उज्ज्वल प्रेमगाथा, वह महान पुरुष हो आज तुम। शेषेन ! तुम वह पक्षहीन गंधर्व हो जो अभिशप्त होकर अन्तरिक्ष वीथियों से नीचे गिर गया है।

जब तुम स्वर्ग छोड़कर निकल पड़े तो तुम्हारे पीछे सुधाकलश, महती कच्छपि, रंभा, मेनका, बसन्त ऋतु, वज्रायुध, ऐरावत, नन्दनवन आदि समस्त कवीन्द्रजाल तुम्हारा अनुगमन करने लगा। अंततः समस्त देवलोक भूलोक पर उतर आया नीलगिरि के नाम से।

यह देवपुरुष की मानव में परिवर्तित होकर दिवि से भूलोक तक की पद-यात्रा है। अमृत का परित्याग कर अश्रु की ओर बढ़कर, कवि के जन्म के लिए अधर की ओर उठाया गया पात्र है।

शिव और कवि की कोई भाषा नहीं होती। सबकी भाषा होती है कण्ठ से निस्रत, लेकिन तुम्हारी भाषा आती है नेत्रों से। तुम वह पक्षी हो जो रखते हो हृदय को अक्षरों में। तुम्हारी भाषा शोक का रूपान्तर है। चारदीवारी के बीच दी गयी शिक्षा नहीं जानती इस भाषा को। क्या तुम जानते हो, इस भाषावेद के रहस्य का उद्घाटनकर्त्ता गुरु कौन है ?—शाखा को अपना सर्वस्व समझ कर उस पर बैठा वह पंख वाला

योगी ! ! ऐ शेषेन ! तुम्हारे जीवन में केलेण्डर की तारीखों से अनुभूतियों की तारीखें कहीं ज्यादा हैं।

सब आशा—नक्षत्रों के पिचकने के बाद जब तुम्हारे दीप पर प्रभात की रक्तिमा आकर गिरी तब मालूम हुआ कि तुम्हें बाँधकर रखने वाला कोई नहीं है और न तुमसे बँधकर रहने वाला भी।

ममता के जाल से जब एक-एक तार छूटने लगा तो बचे रह गये तुम और तुम्हारी छाया।

जीवन ने उतर कर अपना विराट् दर्शन कराया, और कहा—घाव-स्वर्णपदकों को धारण किये वीरपुरुष हो तुम। इस आखिरी स्वर्णपदक से शिखर पर चढ़ गये हो !

अन्त में मालूम हुआ कि मानव आँसू बहाने वाला जन्तु है। इसीलिए में तपस्यालीन हूँ मनुष्य को आयुध बनाने वाले पशु में परिवर्तित करने के लिए।

जीवन को सत्य से मार दिया। बाधाओं के विष को एक द्राक्षाफल बनाकर निगल गया। राग और द्वेष तुम्हें आँख उठाकर देख नहीं सकते। शकुन और अन्धविश्वास अब तुमको डरा नहीं सकते। तुम एक सत्याग्रही बनकर स्तंभ की भाँति खड़े हो। इस मार्ग को रूप देने के लिए तुम्हारे पाँवों ने कितनी यात्राएँ नहीं की होंगी ? कितनी अनुभूतियों की भीड़ नहीं उमड़ी होगी तुम्हारे दरिद्र हृदय में मात्र इस एक गीत को जन्म देने के लिए ? तुम बह रहे हो एक प्रेम निर्झर बनकर दिशाओं को काटते हुए पोंछने के लिए गीली आँखों को···

ऐ शेषेन ! तुम तो मिट्टी हो ! किन्तु मैं जानता हूँ तुमको ! सजीव और निर्जीव नाना रूपों में, नाना भाषाओं में पुष्प-से, पक्षी-से, मृग-से, अरण्व-से, पर्वत-से, और निर्झरणी-से इस रंगारंग मेले में, मतवाले बनकर कई दिनों तक फिरे हो तुम, पर अब थक गये हो। तुम्हारे सब रंगीन गीत प्रस्थापित हो गये हैं भूमण्डल पर अब तुम भूमि में प्रविष्ट हो जाओ, लेट जाओ, और विश्राम करो।

ऐ शेषेन ! यह गुलाब तुम्हारे गीत का पुनर्जन्म है। यह संसार तुम्हारे गीत की रूपान्तर चेतना है। और ये ही हैं तुम्हारी स्वप्निक यातना कि ये देश, ये महाद्वीप—ये कब समझेंगे कि वे एक ही कुटुम्ब हैं भूगोल के।

प्रेम ही तुम्हारा मंत्र है, हृदय तुम्हारा सिंहासन, ऐ शेषेन ! और तुम हो एक प्रेम-लोक के देवता। तुम्हारे लिए एक मंदिर निर्मित करना हो, तो एक वृक्ष लगाकर उसकी शाखा पर एक कोकिला को बैठा देना ही काफी है।

तुम एक गाँव में अंकुरित प्रेम-देवता हो। तुम्हारा नाम सुनना ही काफी है, ऐसी कोई उर्वशी नहीं है, किसी प्रेम-कथा में, जिसके पाताल में जल-प्रपात नहीं फूट पड़ता। तुम्हारा रूप देखना भर ही पर्याप्त है, ऐसी कोई मेनका नहीं है जो स्वप्न में स्खलित न हो जाती हो।

ऐ शेषेन ! इंग्लैण्ड में तुम्हारा नाम एडवर्ड है। इटली में तुम्हारा नाम रोमियो और अरेबिया में मजनूँ, अरे इण्डिया में तुम्हारा नाम है देवदास !! असल में तुम्हारा कोई गाँव भी नहीं है और न जानने वाला भी कोई नहीं है।

तुम वह लघु प्राणी हो जिसने अपने मुट्ठीभर जीवन में उन देवताओं को शरण दी, जो कलियुग के भय से अपने निवास छोड़कर कैलास और वैकुण्ठ में जा बसे थे। और तुम वह शिल्पजीवी हो जिसने नन्दनवनों और नल-कूबरों को इस धरती पर पुनः प्रतिष्ठित किया।

चलो शेषेन ! इन चाँदनी के तूफानों में बहकर चलें ! वह चन्द्रमा लक्स-सोप जैसा है, स्वामी है सब नक्षत्रों का और निपुण है आकाश नौकायन में।

अगर तुमने आँखें मूँद लीं तो मुझे मालूम है कि इस धरती पर आँसुओं के सैकड़ों प्रलय बरसेंगे-लखनऊ में, दिल्ली में, राजस्थान के रेगिस्तानों में मेघ रास्ता भटक कर चमकते हुए गर्जना करेंगे।

सम्राट और सीजर फारो और बादशाह विलास-क्रीड़ा करते हुए जिन दिनों घूमे उद्यानों में, वे दिन तुम्हारे इन्द्रजाल की महिमा से लौट आएँगे लेकिन फिर वापस भाग कर छिप जाएँगे पुस्तकों के पृष्ठों में, तुम्हें मृत पाकर।

ग्रामीण कोमल दूर्वा पर मचलने वालों की मधुरिमा जो परिमलित हुई हाल की 'गाथा सप्तशती' में, सिकन्दर महान के आक्रमण और अरबों की सेनाओं के घोड़ों के खुरों से उड़ी वह धूल, अरे जयपुर के राजमहलों में मयूर-समूहों द्वारा मनाया गया विभिन्न रंगों का महोत्सव जिनकी वेणी में हँसते थे गुलाब, मुगल उद्यानों में फिरने वाली स्वप्निल मांसल देह···ये सबके सब रोने लगेंगे, तुम्हारी देह पर गिर कर।

ऐ शेषेन ! मुझे ज्ञात है—तुम्हारे लिए क्या है मृत्यु ? एक भाण्ड शराब पी कर मस्ती में आँखें मूँदकर दूसरे दिन एक प्रभात में, शाश्वत शून्य है जहाँ स्वप्न रंगों की नहीं है कोई गड़बड़, उस उदय में जागना ही है मृत्यु तुम्हारे लिए।

मुझे मालूम है कि एक द्राक्षा और एक उत्प्रेक्षा को मिलाकर, अशान्त हृदय की नकल मारना है तुम्हारे लिए कविता। मैं यह भी जानता हूँ कि अच्छा भोजन खाकर फ्रेंच शराब से गला धोकर एक कोमल हाथ के सहारे रात की अधेड़ घड़ियों में प्रवेश करना प्रेमेंद्रजाल है तुम्हारे लिए।

सिर्फ इसीलिए कि किसी ऋषि ने कहा, प्रेम को क्यों तोड़ते हो ? अपना रक्त उँड़ेलकर बदले में स्वयं को कमण्डल के जल से क्यों भरते हो ? जीवन जो प्याला भर मधु है, अगर उसे वह बताता है महासमुद्र तो उससे कहो कि वह अपनी दाढ़ी समेत उसमें कूद जाए।

तुम अपनी कामनाओं का दमन करके मान सकते हो कि वह नैतिकता है किन्तु जिन नैतिकताओं ने दमन किया तुम्हारी कामनाओं को असल में वह तुम्हारे लिए सिद्धांत नहीं है। तुम तो एक मासूम मछली हो और वह प्रवचनों के जाल वाला मछुवा। शरीर में से उखाड़कर फेंक दो, डरपोक हृदय को, मत रहने दो, सड़े हुए फल की तरह फेंक दो उसे दीवार के पार।

ओ भाई, पाप समझकर तुम कई मजों से दूर होते जा रहे हो। नरक में जितने मजे हैं उतने स्वर्ग में नहीं। ऐ शेषेन ! तुम वह ऋषि हो, जिसने स्वर्ग और नरक के पृष्ठों को खूब पलटा है। कितना मूर्खतापूर्ण है तुम्हारे नग्न ऋषित्व को दाढ़ी से मापना।

जीवन क्या है, यह दाढ़ी से क्यों पूछते हो ? आम्र की डाल क्या है, यह ब्राह्मण से क्यों पूछते हो ?? मुझसे पूछो या कोकिल से, दूसरों से पूछना मूर्खता है।

ऐ शेषेन ! तुम ऋषि हो बिना दाढ़ी-मूँछ के, और महान भक्त हो बिना भगवान के—तमाम मन्दिरों के घण्टे समवेत स्वर में, यदि इस सत्य को नकारें फिर भी।

अगर तुम्हारी आवाज सुनें तो सदियों के नीचे करवट लेकर सोयी शिलाएँ और पत्थर उठकर बैठ जाएँगे और देखगे अपने शरीर पर शिल्पित कलाओं को एक बार। अजन्ता और एलोरा और उससे पूर्व

की कार्लें गुफाएँ सबके सब चक्कर काटने लगेंगे गुंजन मंजुल नाद बनकर।

तुम्हारे वाक्य हैदराबाद की राहें हैं। ये रास्ते जो तट हैं अनुभूतियों के, उन पर पाँववाले और पाँवहीन सब चलते हैं। ऐ शेषेन! तुम्हारा जीवन निरन्तर सुख-दुःखों का मेला है। अगर जोवन एक समर है तो तुम उसे लड़े बिना मत छोड़ो।

ऐ शेषेन! इस देश ने तुम्हारी सारी विद्याओं को निष्फल कर दिया। आज तुमने जब अपनी सारी शक्तियों को दूर फेंक दिया और फिर से एक शिशु बनकर माया और अज्ञान को आमंत्रित किया। अब तुम यह महसूस कर रहे हो कि हजारों रचनाएँ जिन्हें इतिहास कहते हैं, जिनमें सदियों तक लोगों की नींद और अन्न-पान हराम करने की क्षमता है, उन्हें छोड़कर छोटी-छोटी प्रेम कथाएँ बोलना बेहतर है।

सारी कहानियाँ मौत या विवाह पर आकर खतम होती हैं। पीढ़ी बदल जाती है। उसके बाद। लेकिन तुम्हारी कहानी इनमें से किसी पर भी खतम नहीं होती। पीढ़ी भी नहीं बदलती। वह है चराचर सृष्टि का एक गान। वह है नर-नारी का प्रयाण।

तुम तो कोई गालिब नहीं हो और बोदलेयर तो हरगिज नहीं हालाँकि इन लोगों जैसा एक शब्द कहने की प्रतिभा तुममें है, तो भी नहीं है बल। प्रतिभा शब्द को बल नहीं दे सकती; देने वाला है महाकाल!!

ऐ हैदराबाद, तुम्हारी राहों में मेरी कीर्ति, पराजयों को गलबहियाँ डालकर चल रही है। तुम नहीं जानते कि अगर मैं चाहूँ तो कितनी खुशियाँ दे सकता हूँ तुम्हें। तुम नहीं जानते कि अपनी मुट्ठी में कितने वासन्ती—वनों को बन्द कर लाया हूँ। मेरे हाथों में कितनी बाँसुरियाँ, कितनी बिजलियाँ और कितने नक्षत्र मण्डल हैं तुम्हें नहीं पता। तुमको पता नहीं कि कोकिल डाल पर ही बैठती है, जमीन पर कभी नहीं।

ऐ हैदराबाद, मेरे हरित खयाल तुम्हारे लिए एक पर्णशाला है। मेरा लाल शब्द तो एक गुलमुहर है जो वहाँ खिलता है। कितनी लालसाओं के साथ अवतरित हुआ मैं इस धरती पर एक चक्रवर्ती की भाँति, आज जीवन के इस प्रस्थान में उन कामनाओं के बोझों को ढो सकने में असमर्थता के कारण, मैं एक एक करके छोड़ता चला गया। अन्त में, एक लालसा के लिए अपनी सम्पूर्ण कामनाओं का बलिदान कर दिया। वही बन गयी है प्रश्नचिह्न वही इस चरम क्षण में जिन्दगी है मेरी।

जीवन को पी गया दोनों हाथों से, प्याला डुबोकर, मदिरा की तरह। और दिल डुबोकर दुःख की तरह। मैंने खरीदा आशाओं से स्वर्ग को। एक स्वप्न के लिए जीवन नामक सारे अग्नि-गोलक को पकड़ लिया। राहों को रक्त से जला दिया। लेकिन अब किस नौका पर तैर कर इस रात के, पहुँच सकूँगा उस पार ?

एक दिन जिन संवत्सरों ने शाखाओं में फूल और पक्षी बनकर मेरे हृदय की घाटियों में रंगों को लुढ़का दिया, वही आज निर्जीव तारीखें बनकर केलैण्डरों में लटक रहे हैं।

जीवन के शिकारी दाँतों से लड़-लड़ कर मेरे संधि और समास ढीले पड़ गये हैं। भाषा आधी मर कर मात्र भावों को आँखों में रख

सकी। मेरी जीवन-यात्रा कहाँ ले जा रही है मुझे पता भी नहीं। कितना भी पीड़ित करने दो, कितने भी आँसू बहाने दो और हृदय को कितना भी विध्वंसित साम्राज्य बनाने दो, फिर भी इस प्रेम को तो रहने दो।

चारमीनार के इन शिखरों को हमें और बुलाने दो। हुसैन-सागर की इस फुसफुसाहट को कानों में और गूँजने दो। और इस कमल की कली जैसी हथेली की पीठ को मेरे ओठों के पास हमेशा के लिए रहने दो। मुझे इस धरती के गालों पर चन्द्रमा की भाँति मुट्ठी भर चाँदनी मलने दो।

तुम क्या जानती हो, पूछो उस दीप से, जो मेरी अर्धरात्रियों को जलाता है। तुम्हें क्या मालूम मेरे निःश्वास और मेरी भयावनी कथाएँ। तुम्हारी संध्या को सुन्दर ढंग से शिल्पित करने के लिए जब मैंने एक चुम्बन दिया तब मैं यह नहीं समझ पाया कि वह तुम्हारे हृदय में एक तूफान उठा देगा। तुम्हारे कपोलों पर चिकोटी काट कर गुलाब खिलाया तब मैं यह नहीं जान पाया कि एक विचित्र-परिमल मेरे स्नायुओं को तोड़ता है।

यदि अपने ओठों से तुम्हारे नाखूनों में खिलने वाले गुलाबों को चूमूँ तो मैं नहीं समझता कि वह मेरी सारी स्मृतियों को नकार देगा। जब तुम मेरी बाँहों के बन्दरगाह में प्रविष्ट हुई एक नौका की तरह तो मैं कभी नहीं समझ सका कि तुम्हारी आँखों की नील खाड़ियों में मेरा पाल हमेशा के लिए खो गया।

प्रेम इतना अमूल्य है कि उसके लिए कितनी भी पीड़ा सही जाए, कम है। इसीलिए मैं आज इस पुल पर अकेला बैठ कर चन्द्रमा से अपने ऊपर चाँदनी बरसवा रहा हूँ। मैंने तुमसे प्यार किया उन दिनों में, जब मैं नहीं जान सका कि तुम्हारी मुसकान में कौन-कौन से फूल हैं। ईंटों से नहीं, मगर स्वप्नों से और कुसुमित शाखाओं से घर बनाकर तुम्हारे सँग नया संसार बसाना चाहा। मैं समझा कि जैसे चन्द्रमा आकाश के लिए बना है, वैसे ही तुम मेरे लिए बनी हो।

कोकिला आम्र-शाखा पर जैसी लगती है, वैसी ही तुम बाँहों में लगती हो। जब-जब मैं दुनिया को विजित करता हूँ तब-तब तुम मेरी आँखों में एक आनन्दाश्रु बन कर खड़ी रहती हो। तुम नारी नहीं, सौंदर्यों का एक तूफान हो—तुम वह रूप हो जिसे एक साड़ी और तारे ने मिलकर बुना है। तुम्हारे हाथ पुष्पहार हैं। तुम्हारी मुस्कुराहट

नक्षत्रों की मज्जा है इसीलिए जैसे पवन पत्तियों में शाश्वत प्रेमी बन गया। मैंने स्वयं को उस नाविक में परिवर्तित कर दिया है, तुम्हारी आँखों के बन्दरगाहों में जो किनारों को कभी नहीं ढूँढ़ता। अगर तुम नहीं हो तो मेरी नजर में आकाश क्या है? मात्र शून्य—जिसमें सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों का मेल है। मुझे कभी मत पुकारो कवि, मैं तो स्वप्नों का एक सौदागर हूँ। मेरे बाजारों में तुम्हारी आँखें दो मूल्यवान भूगोल हैं।

क्यों देखती हो ऐसे? हृदय को और आग लगाती हो। उन दोनों दरवाजों को खोल कर अपनी कथाओं का खजाना दे दो, ऐ फूल, तुम जो झूम रहे हो, मेरे खयालों में, क्यों देखती हो ऐसे?

मधु जो प्यालों से पीते हैं, चढ़ता और उतरता भी है किन्तु जो मधु मैं पीता हूँ तुम्हारी आँखों से, वह चढ़ता है किन्तु उतरता नहीं, ऐसे क्यों देखती हो?

मन को तो छुपा सकती हो, किन्तु नजरों का क्या करोगी? मेरी नजरें तोते बनकर तुमसे शरारत करती हैं। देवता भी तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते, भला मैं कहाँ हूँ? जब मैंने तुम्हें देखा तक नहीं था, तभी तुम्हारा दास बन गया था। ऐसे क्यों देखती हो? इस दुनिया में ऐसा कोई नहीं है, जो भर सकता हो उस रिक्तता को जो पैदा हुई थी तुम्हारे नहीं रहने से। मेरी यात्रा में तुम्हारे ओठ ही मधु बन कर पाथेय बन गये हैं। ऐसे क्यों देखती हो? यह वह समय है जब नक्षत्र राज्य करते हैं। इसको मैं किसी अन्य को नहीं दे सकता। पहर ढल रहा है। प्रेम डँस रहा है। क्यों देखती हो ऐसे?

मेरे कण्ठ में जिसने पहली निःश्वास उठायी, वह तुम्हारा सौंदर्य साधारण नहीं है। वे ज्वालाएँ जो तुमने मेरे हृदय में सुलगायीं, तुम भी उन्हें बाँट लो। वाह! तुम्हारी आँखों में एक दृष्टि है, उस दृष्टि में एक लीला है। वह लीला एक पत्थर में भी ज्वाला सुलगा सकती है। तुम अगर झूठ भी बोलती हो, तो वह एक नये सत्य-सी लगती है। जब मैं शिशु था, मैंने देखा दुनिया को झूलते हुए पालने में। अब देख रहा हूँ झूलते हुए तुम्हारी भुजाओं में दुनिया को। कौन रोक सकता है तुम्हें, जो प्रवेश कर रही मेरे हृदय में उन उषाओं को ढोते हुए? कौन धिक्कार सकता है उस उल्का के अधिकार को जो कदम रख रही है आकाश में अखण्ड कान्ति-समूहों के साथ...

पत्ते मुरझा रहे हैं। गाढ़ी चाँदनी की धाराओं में भीगकर चलो, चलें रात की नीमिला में, जहाँ बादलों के दो शुभ्र शरीर तैर रहे हैं।

नक्षत्रों के विशाल जुलूस में चन्द्रमा, चाँदनो का झंडा थामे आगे-आगे चल रहा है। यही है वह रात। दरवाजे ने मुझे बुलाया है। कुर्सी ने मुझे आमंत्रित किया है। प्याले की शराब ने इशारा किया है। सेव ने 'मुझे काँटो, दाँतों से' कहकर अपना मांस दिखा दिया है। शैया ने 'आरोहण करो' कहकर मुझे निमंत्रित किया है और नक्षत्रों की रात ने मुझे गुनगुने आलिगन में घेर लिया—बस ! !

जंघाओं में मचलती हुई मछलियों को बल खाकर पकड़ लिया। उन अधरों से बाँसुरियों को निचोड़ते हुए धुँधले क्षणों में माधुर्यों को लूट लिया। मेरा रक्त धमनियों में चुपचाप रेंगता-दौड़ता चल रहा है, किसी चोर खयाल को हृदय तक पीछा करके पकड़ने के लिए। या किसी रक्त कीड़ारत नारी-रूप को बन्दी करने के लिए।

आकाश है नक्षत्रों की शरणस्थली, और तुम्हारी देह मेरी दीठि का कार्यालय। तुम्हारी आवाज तुम्हारा कण्ठ अलंकृत करने के लिए एक आभरण है, जो मुस्कानों से निर्मित है। तुम्हारे मर-मर स्वर दूर-दूर के समुद्र हैं जो वायुओं में गिर रहे हैं टूट-टूट कर। जैसी तब थी वीनस यूनान के लिए वैसी आज तुम हो हिन्दुस्तान के लिए।

मैं चुनौती देकर पूछ रहा हूँ—कौन-सा नक्षत्र है, कौन-सी उषा है, और कौन-सा पुष्प है कहीं भी, जो तुम्हारे सौन्दर्य का अंश नहीं है। वे भूमि-आकाश कहाँ हैं, जो तुम्हारी तनु-रेखा में एकाकार नहीं होते ?

ऐसा कौन-सा गुलाब है जो तुम्हारी तर्जनी पर चढ़कर और गुलाब नहीं बना ? ऐसा कौन-सा नक्षत्र है जो तुम्हारी आँखों की गहराइयों में कूद कर नक्षत्र-सा नहीं चमका ? कौन-से अव्यक्त भौतिक द्रव्यों से उबाला हुआ पीयूष है तुम्हारा प्रेम, जिसमें अपने स्वप्नों को घुलाकर पीकर कितने मानव-मात्र, देवता बनकर अपने पंखों पर नहीं उड़ गये ? एक बूँद भर चखो तो बस, देह की मांस-पेशियां मोह में डूब जाएँगी। सिर्फ एक ही बस हो मेरे लिए, जहाँ मेरे समस्त स्वप्न सच हैं—मधुर निःशब्द जैसा प्रवास तुम्हारा मंदहास।......

किसी जमाने में घर था जो शरीर मेरी आत्मा का, अब वह तुम्हारी प्रेमाग्नि में जल गया। लेकिन आज मैं लहरा रहा हूँ एक ध्वज बनकर तुम्हारे हृदय-शिखर पर चढ़कर। पहले अनेक ऋतुएँ थीं मेरे

लिए, लेकिन अब तुम्हारी भुजाओं में कोई ऋतु नहीं है—एक वसन्त के सिवा।

क्यों बटोर कर लायी हो अपनी देह में उन करोड़ों क्रूर क्रान्तियों को ? अब देखो क्या हुआ मुझे। मैं अपनी समस्त दृष्टियों को तुम्हारे शरीर के तटों पर रख कर आ गया हूँ।

किन दिगन्तों के उस पार चली गयी हो ? किन द्वीपों पर अपने हंस जैसे चरणों को अंकित कर दिया ?

मेरा क्या होता अगर तुम एक नक्षत्र-पुंज की भाँति मेरे हाथ में नहीं आती ? मेरा क्या होता अगर मेरी रात का भार तुम्हारी देह नहीं ढोती ? जैसा भूगोल को ढोती है धुरी—

मैंने खो दिया अपना शरीर तुम्हारी बाँहों में ऐसे जैसे खो देता है चन्द्रमा अपना बिंब आकाश में। इसीलिए मेरी कोई और जगह नहीं है सिवा तुम्हारे मांस के देश के।

मैं क्या कहूँ ? काल ने मेरी आँखों में फूँका है कितनी रातों को। दीप भी कमजोर होकर लुढ़क गये हैं ढो-ढोकर मेरी रातों को। मैं खो गया हूँ उस जंगल में जिसे सब कहते हैं जिन्दगी। दिन जो चला गया था कल, आज लौटकर आगे बढ़ाता है मेरी कथा-रचना को। दिन जो शाम में मर जाता है, सवेरे लेता है पुनर्जन्म। रात आती है सूर्य के प्रेत की तरह।

क्या करूँ ? मेरी सारी नींद सिर्फ एक साहसिक यात्रा बन जाती है शैया की।

संध्या फिर से अपने दीप जला रही है। विचार अगरबत्ती की तरह सुलग रहे हैं—धुएँ के बादल लुढ़काते हुए। टिक्-टिक् करते हुए घड़ी अपना काम जारी रखे हुए है। अपनी स्मृतियों के बीच फिरते हुए मैंने अभी तुम्हें दैनिक स्वरूपों में देखा। मेरे मार्गों में तुम जिन पदचिह्नों को छोड़ गयी हो, वे मेरे क्षणों को सुनहरी आग लगा रहे हैं जब तुम नहीं हो, फिर भी बैठी रहती हो एक पहाड़ की तरह।

जैसे राजा नगरों पर शासन करता है, वैसे हवा बागों पर शासन कर रही है और तुम मेरे खयालों पर शासन कर रही हो। हालाँकि सूर्य की रोशनी भी अस्तमित होती है कभी, मगर तुम्हारी आँखों की रोशनी कभी नहीं बुझती। तुम्हीं ने मुझे बताया कि एक स्त्री-देवता

के शरीर में कितने नक्षत्र-मण्डल है। कितने सफेद हाथियों के परिवार हैं, कोकिलों के कितने देश हैं और कितने गुलाब-उपवन हैं।

उस हरित मणि-खण्ड को ही समर्पित मत हो जाओ जिसे सब द्वीप कह रहे हैं। इन किनारों पर भी जाओ, मुझे बचाओ उन फूलों के गुंडों से जो मुझ पर रंग फेंक रहे हैं, बेरहम। तुम्हारे स्तन-मण्डलों में घुस कर सर्दी ताप लेने दो। तुम्हारे रक्त में कूद कर घुल जाने दो।

फूलों की हवा प्रविष्ट हुई मेरे कमरे में, उसमें उड़ता मेरा खयाल खिड़की से बाहर उड़ गया, और मैं परिवर्तित हो गया एक ऐसे बालक में जो मेरे स्वप्नों में तुम्हारी मुस्कुराहट के झुण्डों को हाँकते हुए जा रहा है। अगर मैं आऊँ तो यहाँ के परिसर बतियाते हैं तुम्हारे बारे में ही। तुम्हारी आवाज की अनुगुंज को खोजते हुए भागता हूँ पागल की तरह। पानी की कलकल ध्वनि जैसा तुम्हारा कण्ठस्वर मेरे कानों में बहता रहता है।

जब तुम द्वीपान्तर में रहो तब अगर तुम्हारे तमाम गुलाब स्वयं आकर मेरा दर्शन करें, तो मैं क्या करूँ? और तुम्हारे समस्त मधुर स्वर मिलकर मुझ पर आक्रमण करें, तो मैं क्या करूँ? तुम जानती हो कि इन एकान्त क्षणों की निर्दयता में मेरी दोनों आँखों से स्वर्ग बह रहे हैं।

बिल्लौर में जो रंग हैं और तुममें जो गहराइयाँ हैं, उनका अनुमान ही लगाया जा सकता है। इसीलिए हम आज संलाप कर रहे हैं एक शब्दहीन भाषा में। तुम बैठी रहती हो शान के साथ एक महान् अफ्रीकी द्वीप की तरह और आदेश देती हो, 'खड़े रहो' चाँद को भी, जो आकाश के परे चला जा रहा है। और पर्वतों को भी इंगित करती हो उँगली से 'आओ इधर!'

तुम्हारी आँखों में सागर भी बच्चों की तरह मचलते हैं। तुम्हारी एक बात में ही करवट लेकर लेटे रहते हैं सारी प्रेम कथाओं के पुस्तकागार, जिन्हें निर्मित किया मानव ने। तुम्हारे खयालों में मुकुटधारी सम्राट भी सिर झुका कर चलते हैं, ऐसे चलते हैं, उन रास्तों पर जहाँ उनका शासन नहीं है।

तुम नहीं मानतीं कि किन्हीं भी जंघाओं का जोड़ा प्रेम बन सकता है। और यह भी तुम नहीं मानती कि अनन्त काल को अर्धरात्रि में

बाँधा जा सकता है पोटली में। तुम जानती हो कि एक रात में प्रेम पैदा नहीं होता, एक रात में नक्षत्र पैदा नहीं होता।

एक समय मुझे किसी भी शराब का नाम नहीं मालूम था। मैंने किसी समुद्र को पार नहीं किया था। हवाओं में उड़कर किसी महानगर तक नहीं पहुँचा था। किसी रंगमंच पर भी नहीं चढ़ा था। किसी पर्दे पर कभी आक्रमण नहीं किया। मेरे पास कोई भाग्य नहीं, कोई अधिकार नहीं। और सुन्दर महिलाओं ने कभी आँख उठाकर भी नहीं देखा। तुमसे मिलने से पहले मेरा चेहरा एक अमरीका था जिसे कोलम्बस ने देखा नहीं था। एक एवरेस्ट था जिस पर हिलेरी चढ़ा नहीं था। तब किसी को मुझसे ईर्ष्या नहीं थी और मुझमें अशान्ति भी नहीं थी। लेकिन अब मैं देश में वह हीरो हूँ जिसने एक पूरी पीढ़ी को एक महान् प्रेम-गाथा दी। एक नीरो हूँ बिना फिडल जिसने ईर्ष्याग्नि—ज्वालाओं के नगरों को उपहासास्पद बना दिया। वाह! क्या अद्भुत चीज है कि यह धरती इतनी सदियों से अपनी प्रदक्षिणा कर रही है, क्या इसीलिए कि तुम्हें दे-दे मुझे? इस भूगोल के इतने सुदीर्घ इतिहास का क्या यही परिणाम है?

वह जो प्रेम में फँस गया, अपने प्रेम के वर्णन के लिए तमाम अस्व-स्थता के लक्षणों की उपमाएँ व उत्प्रेक्षाएँ बनाकर वर्णन करता है कि मेरा हृदय भग्न हो गया, मेरी आँखों को तुम्हारे सिवा दुनिया में कोई चीज दिखायी नहीं देती। मैं तो वह आदमी हूँ जो उस भाषा को नहीं जानता। मैं वह ऋषि हूँ जो आकांक्षा करता है कि कोई स्त्री स्वप्न में भी उस पर गिर कर टूट न जाए।

मैं जानता हूँ कि महिलाएँ पसंद करती हैं उन आँखों को जो देख सकती हों उनके वस्त्रों के पार। लेकिन तुम तो उन्हीं आँखों को चाहती हो, जो तुम्हारे शरीर को पार कर दर्शन कर सकती हों तुम्हारे अन्दर के स्वप्नलोकों का।

इसीलिए मैं गा रहा हूँ एक ही हृदय को पिघलाने के लिए। अपनी समस्त कविताओं को जो मेरी उच्छ्वास-निश्वासों का रूपान्तर है। बुन रहा हूँ सिर्फ एक ही चेहरे पर मुसकान प्रस्फुटित करने के लिए। जैसे सारे कोटि-कोटि नक्षत्र चमक रहे हैं सिर्फ एक ही आकाश को जगमगाने के लिए।

तुमको कविता सुनाना एक अंगूर के उपवन को नमन करने के

समान है। चाँद एक बर्फ का टुकड़ा है जो प्रेमियो की नींद हराम करता है। उस टुकड़े को साक्षी बनाकर कह रहा हूँ कि मैं केवल तुम्हें ही प्रेम करता हूँ। मैं तुम्हें ऐसे ही प्रेम करता हूँ जैसे कि मेरे बचपन में उन सब राजकुमारियों से जो काशी मजली कथाओं और अरैबियन नाइट्स की गाथाओं से उतर आयी थी—वे ही समझकर।

मैं रद्द कर देता हूँ अपने समस्त कीर्ति स्वप्नों को जो मुझे निश-दिन सताते हैं, सिर्फ इसलिए कि मैं पा सकूँ तुम्हारे संग सोने के एक ही स्वप्न को।

मुझे विश्वास है कि यह विशाल प्रपंच रचा ही गया है सिर्फ एक नारी और एक पुरुष के लिए, जैसे कि सम्पूर्ण कैलास पर्वत निर्मित किया गया सिर्फ एक शिव और एक पार्वती के लिए। मैं कहता हूँ कि तमाम जिन्दगी का लक्ष्य एक ही है जैसे कि सारे चक्र का एक ही केन्द्र होता है।

हम दोनों परस्पर ऐसा प्रेम करेंगे जिससे कि निचोड़ सकें हर रात में से अपने समस्त महत्तर कामोद्रेक लोकों को। जिससे कि हर प्रभात से एक महान् सत्य आविर्भूत हो कि कल का प्रेम आज सत्य नहीं है।

मैं मरणोपरान्त भी तुमसे प्रेम करता रहूँगा क्योंकि प्रेम नहीं जानता जीवन और मरण के बीच कोई अन्तर। मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि मैं मरकर और दूसरा जन्म लूँ तो भी बारम्बार प्रेम करता रहूँगा उन्हीं रक्त-मांसों को और उन्हीं मादक सौरभों को।

मैं तुम्हें ऐसे प्यार करना चाहता हूँ ताकि उन्हीं दो जंघाओं में से अपने समस्त आनन्द-ब्रह्मों को कात सकूँ, ताकि उन्हीं दोनों मृदु-मधुर नेत्रों में से समस्त जीवन का साक्षात्कार कर सकूँ।